इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 20
भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य

खंड

5

भारतीय दलित उपन्यास

इकाई 18
'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु 5

इकाई 19
'मशालची' में चित्रित दलित जीवन 15

इकाई 20
'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु 25

इकाई 21
'अस्पृश्य वसंत' में चरित्र चित्रण 37

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय (सेवानिवृत्त)
सी–3, कावेरी, इग्नू आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह (सेवानिवृत्त)
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

स्व. प्रो. शिवकुमार मिश्र
गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
प्रो. चमनलाल भारतीय भाषा केंद्र जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	**18 और 19**	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
डॉ. वी. कृष्णा हिंदी विभाग हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैदराबाद	**20 और 21**	

(संशोधन – प्रो. विमल थोरात)

पाठ्यक्रम निर्माण एवं संपादन सहयोग
डॉ. शिवदत्ता वावळकर
आर.टी.ए., मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

आवरण चित्रकार
सवी सावरकर
नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग
मिथिलेश प्रसाद/कौशल्या सैनी
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

जुलाई, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6784-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रक : गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी–90, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110020

खंड परिचय

एम.एच.डी. 20 'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' इस पाठ्यक्रम का यह पांचवां खंड 'भारतीय दलित उपन्यास' है। चौथे खंड में आप ने भारतीय दलित आत्मकथनों का अध्ययन किया है। इस पांचवें खंड के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में लिखित, विशेषतः पंजाबी भाषा के लेखक गुरुचरण सिंह राओ के उपन्यास 'मशालची' और तेलुगु के जी. कल्याणराव के उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' का अध्ययन करना है। दलित साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही उपन्यास प्रमुख विधा है। दलित उपन्यासकारों ने समय, समाज एवं परिवेश के आलोक में दलित जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक पहलुओं को बड़ी शिद्दत से उजागर किया है। इस खंड में अध्ययन के लिए चयनित उपन्यासों के विश्लेषण से आप दलित जीवन के संघर्ष और व्यथाओं को समझ सकेंगे। इसके अलावा उपन्यासकारों की वैचारिकी और प्रतिबद्धता को भी जान सकेंगे। इस खंड में दो उपन्यासों पर कुल चार इकाईयाँ है–

इकाई 18 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु
इकाई 19 'मशालची' में चित्रित दलित जीवन
इकाई 20 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु
इकाई 21 'अस्पृश्य वसंत' में चरित्र चित्रण

खंड की इकाई 18 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु पर केंद्रित है। इसमें पंजाबी दलित साहित्य की पृष्ठभूमि को समझने के साथ–साथ मशालची में अभिव्यक्त दलित जीवन के संदर्भ को विश्लेषित किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप डॉ. गुरुचरण सिंह राओ के रचनात्मक योगदान से परिचित होंगें। इनका 'मशालची' उपन्यास पंजाबी दलित जीवन की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विडंबनाओं को उजागर करता है। इस इकाई के अध्ययन से आप मशालची उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र एवं विशेषताओं को विश्लेषित कर सकेंगे। साथ ही लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता, वैचारिकी और पंजाबी दलित चेतना से भी परिचित होंगे।

खंड की इकाई 19 'मशालची' में चित्रित दलित जीवन पर केंद्रित है। डॉ. गुरुचरण सिंह राओ ने 'मशालची' में पंजाब के ग्रामीण क्षेत्र के दलित जीवन को यथार्थवादी दृष्टिकोण से उजागर किया है। देश विभाजन पूर्व और विभाजन के उपरांत पंजाब के दलित समाजों में जो स्थितियाँ उत्पन्न हुई उसका भी अंकन उपन्यास में मिलता है। पंजाब का दलित समाज जागरूकता के अभाव में वर्चस्वादियों के शोषण और उत्पीड़न को सहता रहा है। शोषण से मुक्ति की अभिलाषा लेकर संघर्षरत् दलितों के जीवनानुभवों को उपन्यासकार ने बड़ी शिद्धत से मुखर किया है। इस इकाई में आप 'मशालची' में अभिव्यक्त दलित चेतना और परिवर्तनकामी विचारों से परिचित होगें। साथ ही पंजाबी दलित लेखन की विशेषताएं एवं वैचारिकी को भी समझ सकेंगे।

खंड की इकाई 20 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु पर केंद्रित है। जी. कल्याणराव का यह 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास तेलुगु दलित साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें जाति आधारित सामाजिक आर्थिक संदर्भों को मुखर किया गया है। उपन्यास में एक दलित परिवार के सात पीढ़ियों की संघर्षगाथा को दर्शाया है। इस इकाई के अध्ययन से आप जी. कल्याणराव के रचनात्मक योगदान, 'अस्पृश्य वसंत' की कथावस्तु, उपन्यास की विशेषताएं और दलित चेतना के पहलुओं से परिचित होंगे।

खंड की इकाई 21 'अस्पृश्य वसंत' में चरित्र चित्रण है। इस इकाई में उपन्यास के चरित्रों की स्वभावगत विशेषताओं को रेखांकित किया है। इन चरित्रों के माध्यम से दलित जीवन की व्यथाएं और विडंबनाओं को समझने की कोशिश की गई है। दलित जीवन की जटिलता एवं वास्तविकता को उजागर करने के लिए उपन्यासकार ने सार्थक चरित्रों का सृजन किया है।

इस सम्पूर्ण खंड के महत्वपूर्ण प्रश्न अंत में दिये गए हैं। साथ–ही उपयोगी पुस्तकों की सूची दी है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए, इससे आप को अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 18 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पंजाबी दलित साहित्य

18.2.1 पृष्ठभूमि

18.2.2 आधुनिक पंजाबी दलित साहित्य

18.3 गुरचरण सिंह राओ - लेखक परिचय एवं कृतित्व

18.4 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु

18.5 'मशालची' की रचनागत विशेषताएं

18.6 'मशालची' उपन्यास का परिवेश

18.7 सारांश

18.0 उद्देश्य

'भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य' के पांचवां खंड 'भारतीय दलित उपन्यास' पर आधारित है। इसमें पंजाबी भाषा के उपन्यास 'मशालची' पर यह पहली इकाई है। इस इकाई में आप पृष्ठभूमि के रूप में पंजाबी दलित साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे तथा साथ ही पंजाबी भाषा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दलित उपन्यासकार डॉ. गुरचरण सिंह राओ के जीवन पर दृष्टिपात करते हुए उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे। इसके साथ ही 'मशालची' उपन्यास की कथा रचना की विशेषताओं को भी इस इकाई में रेखांकित किया जाएगा। डॉ. गुरचरण सिंह राओ पंजाब के मालवा क्षेत्र में दलित परिवार में पैदा हुए, लेकिन उन्होंने कठिन श्रम से एम.बी.बी.एस. तक की परीक्षा पास की व सेना में कप्तान बने। बाद में उनकी लेखन में रूचि जागृत हुई व अपने समाज के यथार्थ को उन्होंने कथा-साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करना शुरू किया। पंजाब के दलित जीवन का यथार्थ सबसे अधिक सशक्त रूप में राओ की रचनाओं में ही उभर कर सामने आया है। अतः इस इकाई में आप पंजाब के दलित जीवन की वास्तविकताओं को जान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- पंजाब के दलित साहित्य की संक्षिप्त जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- पंजाबी दलित उपन्यासकार डॉ. गुरचरण सिंह राओ के जीवन तथा रचना से परिचित हो सकेंगे;
- डॉ. राओ के उपन्यास 'मशालची' का कथासार जान सकेंगे;
- 'मशालची' की कथा-रचना की अन्यतम विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे;
- लेखक द्वारा 'मशालची' की कथा-रचना में प्रयुक्त विभिन्न विधियों का भी कुछ परिचय प्राप्त कर सकेंगे; और
- पंजाब के सामाजिक जीवन में दलित वर्ग के चित्रिण द्वारा दलित जीवन की वास्तविकताओं का कुछ अनुमान भी पाठक को इस उपन्यास के पठन से होता है, जो आप को भी होगा।

18.1 प्रस्तावना

पंजाबी दलित साहित्य की प्रारंभिक जानकारी हासिल करते हुए व पंजाब मे दलित वर्ग की स्थितियों का प्रारंभिक आकलन करते हुए आप इस इकाई में 1886 में प्रथम बार प्रकाशित 'मशालची' उपन्यास का अध्ययन करेंगे। जिस समय पंजाबी में 'मशालची' का प्रकाशन हुआ उस समय मराठी में तो दलित साहित्य शिखरों को छू रहा था, कुछ अन्य भारतीय भाषाओं-गुजराती, कन्नड़ आदि में इसने दस्तक दे दी थी, लेकिन पंजाबी में अभी इसने शुरूआत ही करनी थी। 'मशालची' से ही पंजाबी में दलित साहित्य ने एक तरह से अलख जगाई, यद्यपि इसके लेखक का अपनी रचना के प्रकाशन के कुछ ही समय बाद असमय देहांत के कारण 'मशालची' उपन्यासकार की सही ढंग से चर्चा नही हो पाई। पिछले कुछ वर्षों से 'मशालची' उपन्यास पुनः चर्चा के केंद्र में आया है। प्रस्तुत इकाई में आप उपन्यास लेखक के जीवन व रचनाओं के साथ 'मशालची' के कथासार को समझ सकेंगे।

18.2 पंजाबी दलित साहित्य

18.2.1 पृष्ठभूमि

पंजाब में जाति विभाजन भले ही उत्तरप्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र इतना तीव्र नहीं है और इसके लिए पंजाब में सिख धर्म की समाज सुधारक भूमिका का भी योगदान है, लेकिन ऐसा भी नहीं कि पंजाब में जातिगत भेदभाव है ही नहीं। अभी हाल में जालंधर के तल्हण गाँव में हुई जातिगत हिंसा की घटनाओं से पता चल जाता है कि किताबों के लिखे को जिदंगी में हुबहू पढ़ा नहीं जाता। 1947 में भी जब हिंदू-सिख और मुसलमानों के बीच जघन्यतम सांप्रदायिक दंगे हुए तो पांच-छः लाख निर्दोष लोग इन दंगों की बलि चढे और मनुष्यों ने एक दूसरे के साथ क्रूरतम व्यवहार किया विशेषतः दोनों पक्षों की स्त्रियों को जिस ढंग से प्रताड़ित और सार्वजनिक रूप मे बलात्कार और हिंसा की घटनाओं से अपमानित किया गया उसके उदारहण भी दुनिया मे कम ही मिलते हैं और यह इस दुःखद तथ्य को भी फिर रेखांकित करता है कि भावनात्मक स्तर पर उत्तेजित और भीड़-मनोविज्ञान से नियंत्रित जनता तर्क और मानवीयता और अपने ही फर्ज की परंपराएं और उपदेश सब कुछ भूल जाती है और केवल हिंसा के तांडव-नृत्य मे शामिल होकर मानवता को कलंकित करती है। 1947 में दोनों ही अर्थात् हिंदू-सिख एक तरफ और दूसरी तरफ उसे मुस्लिम समुदाय ने गुरु ग्रंथ साहिब को भी और सूफी संतों बुल्लेशाह आदि की वाणी को नज़रअंदाज़ करते हुए एक दूसरे के साथ वह सलूक किया कि यह दंगे एक स्थायी कलंक के रूप में अंकित है।

गुरू गोविंद सिंह की यह वाणी है कि 'मनुष्य की जात समैए पहचानबौ' फिर भी यह बात पंजाब में भी व्यवहार में लागू नहीं होती। सिख धर्म को सबसे ज्यादा उदार मानने वाले विचारक चिंतक भी पंजाब में ही सिखों के भीतर तथाकथित उच्च-निम्न जातियों के लोग न तो विवाहादि संबंध करते हैं और न ही इसके लिए प्रचार करते हैं। यही कारण है कि पंजाब में भी दलित साहित्य की ज़रूरत पड़ी।

पंजाबी दलित साहित्य का आदिस्रोत तो स्वयं आदिग्रंथ ही है, जिसे पांचवे सिख गुरु, गुरु अर्जुन देव ने 1604 ई. में संपादित किया था और जिसमें सिख गुरुओं के साथ साथ सैंतीस भक्त कवियों की वाणी भी संकलित हैं। इन भक्त कवियों में सशक्त दलित कवि-कबीर, रविदास, नामदेव, सैन आदि शामिल हैं। सिख गुरुओं व भक्त कवियों ने जातिवाद की तीखी आलोचना की है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' ही मध्यकालीन दलित साहित्य का अच्छा संदर्भ ग्रंथ है।

18.2.2 आधुनिक पंजाबी दलित साहित्य

आधुनिक काल में प्रायः सभी प्रभावशील लेखकों ने दलित जीवन और चरित्रों को अपने लेखन का आधार बनाया और उनके जीवन संघर्षों को सहानुभूति व सह-अनुभूति दोनों से ही चित्रित किया। सुजान सिंह, नानक सिंह, बाबा बलवंत आदि प्रगतिशील लेखकों ने भी दलित जीवन की समस्याओं को अपने लेखन के जरिए उभारा, लेकिन मौजूदा अर्थों में दलित साहित्य परिभाषिक शब्द सदी के अंतिम दशक में ही पंजाबी में प्रचलित हो सका।

पंजाबी दलित कथा साहित्य में प्रभावशाली लेखकों - सुजान सिंह, संतोस सिंह धीर, गुरदयाल सिंह की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले लेखकों में प्रेम गोरखी, किरपाल, कज़ाम अतरजीत, भूरासिंह कलेर, नछतट, लाल सिंह आदि शामिल हैं। सातवें दशक में अतरजीत की कहानी 'बठलू चमार' से दलित पीड़ा पंजाबी कथा-साहित्य के केंद्र में आई। प्रेम गोरखी की 'अर्जुन सफेदीवाला, भूरा सिंह कलेश कृत 'पूरे पन्ते' आदि कहानियों में दलित उत्पीड़न का प्रमाणिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ। इसी क्रम में डॉ. राओ का 'मशालची' उपन्यास 1986 में छपा। इससे पहले गुरदयाल सिंह के उपन्यास तथा निदंर मिल का उपन्यास 'दास्ता दलित दी' 1993 में छपा था।

आठवें-नवें व सदी के अंतिम दशक में पंजाबी में दलित कहानी के नए हस्ताक्षरों ने अपनी पहचान स्थापित की। जिनमें भगवंत रसूलदुरी, मोहन लाल किल्लोरिया, देसराज काली, जिंदर, मक्खन मान, अजमेर सिद्धू आदि शामिल हैं।

आधुनिक पंजाबी कविता में दलित धारा काफी प्रबल है। पंजाबी कवियों की बड़ी संख्या दलित पृष्ठभूमि से संबंधित है। फिर भी सभी ने दलित पीड़ा को केंद्र में नहीं रखा है। जबकि पाश जैसे गैर-दलित कवि की दलित संवेदना की कविताएं भी काफी सशक्त हैं।

लालसिंह दिल को अब दलित कवि के रूप में अधिक प्रस्तुत किया जा रहा है, जबकि उनकी कविता की शुरूआत नक्सलवादी आंदोलन के प्रभाव के साथ, संतराम उदासी, तथा अमरजीत मदन आदि के साथ ही हुई थी। अब लाल सिंह दिल के साथ-साथ संतराम उदासी की भी क्रांतिकारी की बजाय दलित कवि के रूप में अधिक चर्चा की जाती है।

सही अर्थों में प्रतिनिधि दलित कवि गुरदास राम आलम हैं, जिन्होंने अपनी सभी कविताएं और काव्य संग्रह में दलित उत्पीड़न को ही आधार बनाया है। उनके बाद उदासी, स्वर्गीय मनजीत कादर, मदन वीरा, फर्म कम्भेआना, गुरजीत कल्लरवजी, द्वारका भारती आदि पंजाबी कवि दलित धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। पिछले दिनों मदन वीरा ने कुछ अच्छी और संवेदनशील कविताओं में दलित कथा को उभारा है।

पंजाबी दलित नाटक

पंजाबी नाटक में दलित जीवन सीधे तौर पर विषय बुनकर नहीं उभरा है, लेकिन अब नाटककारों का ध्यान इस ओर गया है। शुरू के नाटक में डॉ. गुरचरण सिंह ने 'रत्ता सालू' आदि नाटकों व बलवंत मार्गो ने 'लोहाकुट' 'केसरो' व स्वराजवीर जैसे नाटककारों ने इस दिशा में ध्यान केंद्रित किया है।स्वराजबीर ने अपने नाटक 'कृष्णा' में आदिवासी भीलों की संवेदना को केंद्र में रखा है तो चरणदास सिद्धू ने अपने नाटक 'शहीद भगतसिंह' में भगत सिंह की दलित वर्ग के प्रतिसंवेदना को रेखांकित किया है।

पंजाबी दलित आत्मकथा

पंजाबी में प्रथम दलित आत्मकथा 1994 में छापकर सामने आई। 'गैर हाज़िर आदमी ' शीर्षक की इस आत्मकथा के रचयिता प्रेम गोरखी थे। पंजाबी में दूसरी व अधिक चर्चित आत्मकथा कवि लाल सिंह दिल की 'दास्तान' रही। इसका प्रकाशन 1998 में हुआ इसके बाद 1989 में पंजाबी की प्रसिद्ध कथाकार वंचित कौर की आत्मकथा 'पगडंडियां' छापकर सामने आई जिस पर कम चर्चा हुई। बलवीर माधोपूरी ने अपनी आत्मकथा 'छांग्या रूख' (चिला हुआ वृक्ष) में मराठी प्रदेश का कुछ पालन किया। यह आत्मकथा 2002 में छपी। इनके अतिरिक्त पंजाबी में ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन का अनुवाद अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इस आत्मकथा का पंजाबी में नाट्यरूपांतरण हिंदी से भी पहले हुआ और बड़ी सफलता से इसके सैंकड़ों प्रयोग अब तक हो चुके हैं। शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी व बेबी कांबले की आत्मकथा 'जीवन हमारा' का पंजाबी अनुवाद भी काफी लोकप्रिय हुआ है।

इस प्रकार आधुनिक पंजाबी दलित साहित्य में काफी सशक्त रचनाएं उभर कर सामने आई हैं। हालांकि पंजाबी में दलित साहित्य के प्रति कुछ प्रतिरोध का भाव है और बहुत से प्रगतिशील लेखकों ने भी खुले मन से इस मानवीय धारा का स्वागत नहीं किया है, तो भी धीरे-धीरे भारतीय साहित्य में पंजाबी दलित प्रवृत्ति को स्वीकृति व सम्मान मिल रहा है।

18.3 डॉ. गुरचरण सिंह राओ : लेखक परिचय एवं कृतित्व

लेखक

'मशालची' के आरंभ में लेखक ने अपनी ओर से जो दो शब्द कहे हैं, उनसे उनके लेखक रूप में विकास का तो कुछ अंदाज होता है लेकिन उनके जीवन संबंधी तथा जन्मतिथि आदि की कोई व्यवस्थित सूचना नही मिलती। लेखक का कुछ वर्ष पूर्व देहांत हो गया, लेकिन उनकी मृत्यु की यथातथ्य तारीख भी फिलहाल उपलब्ध नहीं है। लेखक की औपन्यासिक रचना 'मशालची' का नायक कटार सिंह जसे 1939 में अमृतसर के मेडिकल कालेज से एम.बी.बी.एस. करने की सूचना भी उपलब्ध है। भारतीय समाज में आम तौर पर 24-25 वर्ष की आयु में ही कोई युवक एम.बी.बी.एस. की परीक्षा पास करता है, अतः लेखक का जन्म भी 1939-40 के आसपास का ही होगा। संभवतः लेखक का गाँव मुहल्लापुर दाखा (लुधियाना के पास) हो सकता है, जहां पर उन्होंने अपना अस्पताल स्थापित किया था। जिसे उनके परिवारजन अभी भी चला रहे हैं। लेखक ने आर्मी मेडिकल कॉलेज में पांच वर्ष की सेवा की और फिर कैप्टन के पद से रिटायर हुए। रिटायर होकर लुधियाना जिला के मुहल्लापुर दाखा में चिकित्सक के रूप में सेवा शुरू की, वहीं से अपने प्रयासों से 1986 में 'मशालची' उपन्यास छपवाया, जिसके कुछ ही समय बाद उनका देहांत हो गया।

लेखक ने अपने बचपन की दिलचस्प घटना व्यक्त की है एक बहुत कमज़ोर बज़ुर्ग किसी सुनार से लाई राख को छानता रहता। दादा से पूछने पर दादा ने बताया कि कभी कभार इस राख से सोने के कुछ कीमती कण मिल जाते थे। इसी प्रेरणा से लेखक ने भी बचपन में कचरे के ढेर धूरे को छानना शुरू किया तो कई बार उसे ऐसी ऐसी कीमती चीजें (सोने का लौंग आदि) मिली। कि उसे बचपन की इन रूचियों से समाज द्वारा 'राख का ढेर' बना कर रख दिए गए निम्न वर्गों (दलित) के जीवन पर उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली।

डॉ. राओ द्वारा अपने रचनाकार व्यक्तित्व निर्माण की जो कथा (सच्ची स्थितियाँ) बचपन की कहीं गई हैं, वे वास्तव में तथ्यपरक तो हैं ही, कथा इस बात को भी रेखांकित करती हैं कि जिसे हम जीवन में कूड़ा करकट या राख का ढेर मात्र समझते हैं, जैसे ऊच वर्गों द्वारा निम्न वर्गों से सलूक किया जाता है, उसी 'राख के ढेर' और कूडा करकट (धूरे) से ऐसे मोती मिलते हैं कि देखने वाले दंग रह जाते हैं। लेखन कर्म या सृजन कर्म एक सौन्दर्यमूलक कर्म है, लेकिन इसके लिए धूरे भी छानने पड़ते हैं और जो जितने गहरे जाकर राख के ढेर छानते हैं उतने ही सुंदर मोती (साहित्यकार रचनाकार) चुनकर लाते हैं।

डॉ. गुरचरन सिंह राओ ने दो उपन्यासों की रचना की, जिनमें 'मशालची' तो छापकर बहुचर्चित हुआ लेकिन उनका रचा एक और उपन्यास 'खारी गंगा' नहीं छप पाया, हालांकि 'मशालची' में ही यह सूचना दर्ज है कि यह उपन्यास (खारी गंगा) प्रकाशनाधीन है। यह उपन्यास न तो लेखक के जीवनकाल में ही छप पाया और न ही उनके देहांत के उपरांत इस उपन्यास की पांडुलिपि भी सुरक्षित है या नहीं, यह भी निश्चित नहीं है।

इसी प्रकार लेखक का एक कहानी संग्रह - 'समे द रंग' (समय के रंग) भी प्रकाशनाधीन बताया गया था, इस संग्रह संबंधी भी कोई सूचना नहीं कि इस संग्रह की पांडुलिपि कहां है? शायद परिवार के पास हो?

'मशालची' उपन्यास के छपने से पहले डॉ.राओ के दो कहानी संग्रह छप चुके थे। 'डंगोरी' (अंधे की लाठी) कहानी संग्रह 1974 में छपा। जिसके संबंध में पंजाबी के वरिष्ठ मार्क्सवादी आलोचक स्व. संतसिंह सेखों का कथन है कि 'ऊच्च कला बोध का प्रमाण देती है।'

पंजाबी के इस प्रतिभाशाली कथाकार के असमय काल कवलित होने से पंजाबी दलित साहित्य को अपने आरंभ में ही कडी चोट सहनी पडी और पंजाबी के प्रथम सशक्त कथाकार को आलोचकों की ओर से उपेक्षा की मार भी झेलनी पडी। केवल दो वरिष्ठ आलोचकों-संत सिंह सेखों, जिन्होंने 'मशालची' की भूमिका लिखी और पंजाबी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'सिरजणा' के संपादक डॉ. रघबीर सिंह 'सिरजणा' जिन्होंने इस उपन्यास पर गंभीर आलेख लिखकर इसका स्वागत किया। इसके अलावा पंजाबी लेखन जगत में इस उपन्यास की उपेक्षा की गई। अभी हाल के वर्षों में डॉ. चमनलाल ने हिंदी में इस उपन्यास को दलित प्रसंग में चर्चा के केन्द्र में रखकर फिर से उभारा है।

कुल मिलाकर डॉ. गुरचरण सिंह राओ का कथा-साहित्य दो कहानी संग्रह और उपन्यास 'मशालची' सार्थक व सोदेश्य लेखन का उत्तम उदाहरण है। यदि उनकी दोनों अन्य रचनाएं-कहानी संग्रह व उपन्यास 'खारी गंगा' भी छाप सकें तो पंजाबी व भारतीय दलित साहित्य और भी समृद्ध होने की संभावना है।

18.4 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु

37 अध्यायों में बंटे 'मशालची' उपन्यास का आरंभ द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ यानि 1939 से होता है लेकिन साथ ही 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन का ज़िक भी है। उपन्यास के आरंभ में ही कर्तार सिंह सराभा, भगतसिंह व सुभाषचंद्र बोस को क्रांतिकारी पथ के पथिक बताते हुए उनके महात्मा गांधी के 'अहिंसावाद' से मतभेद बताते हैं। इस समय उपन्यास के एक दलित पात्र भगतू की पत्नी बचनी को बेटा पैदा होता है, जो भगतू की तरह काला, लेकिन जिसके नयन-नक्स बचनी की तरह सुंदर हैं। भगतू ज़मींदार के यहां गुड़ लेने जाता है तो ज़ैलदारनी उसे सड़ा हुआ काला गुड दे देती है, इसे भगतू को अपनी बिरादरी में बांटकर खुशी सांझी करनी होती है।

दलितों को सरकार व ज़मींदारों द्वारा बिना वेतन दिए बेगार करवाए जाने के दृश्य तथा ज़मींदारों द्वारा दलितों को अपमानजनक ढंग से बुलाने को भी उपन्यास में चित्रित किया गया है। भगतू के घर में बहुत अच्छी दूध देने वाली भैंस है, जिसे वह कर्ज़ के बदले जैलदार के घर बांध आता है। हालांकि बचनी बहुत शोर मचाती है कि नए जन्मे बालक को दूध पिलाने के लिए भैंस घर में ही रखे, पर वह मानसिक गुलामी में बंधा बच्चे की भी चिंता नहीं करता।

इस तरह के हालात में ही बचनी व भगतू का बेटा कट्टू या कटार सिंह आठ साल का हो जाता है। बचनी उसका नाम करतार सिंह रखना चाहती थी, लेकिन दलितों को करतार सिंह जैसा सुशोभित नाम रखने की इज़ाजत नहीं। भगतू की मानसिक गुलामी से तंग आई बचनी चाहती थी कि उसका बेटा स्कूल में पढ़ लिख कर इस माहौल से मुक्ति पाए। भगतू उसे अभी से जमींदारों की गुलामी में जकड़ देना चाहता था, लेकिन इस मामले में उसकी बात बचनी नहीं मानती और बेटे को नजदीकी गांव के प्राइमरी स्कूल में दाखिल करवाने को ले जाती है। स्कूल का हेडमास्टर आनाकानी करने के बाद पहले दलित बच्चे को स्कूल में दाखिल तो कर लेता है, लेकिन कट्टू को बिठाया भी अलग जाता है और उससे बदसलूकी भी की जाती है। स्कूल में गरीब जाटों का लड़का शमिंदर ही उससे हमदर्दी रखता है और उन दोनो में दोस्ती भी हो जाती है।

सारे अवरोधों और बदसलूकियों के बाबजूद जिनमें जमींदार के लडकों और मास्टरों द्वारा की गई मार-पीट भी शामिल है। कट्टू पढ़ने में प्रतिभा दिखाता है और अच्छे अंक लेकर पास होता जाता है। स्कूल में दाखिल होते ही 1947 के विभाजन के साथ ही हिंदू-सिख और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक दंगे शुरू हो जाते हैं। कट्टू के प्यारे दोस्त नूरे और उसके परिवार सहित गांव के सारे मुसलमान गांव छोड़ जाते हैं और उनके जाते ही उनके घर गांव वाले ही लूट लेते हैं। उपन्यास के अध्याय में लेखक ने इन दंगों में हिंदू-सिखों द्वारा मुसलमानों व उनकी स्त्रियों के साथ की गई क्रूरताओं का विस्तृत वर्णन है। लेखक कहता है कि यदि पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों द्वारा हिंदू-सिख स्त्रियों के साथ किए ऐसे ही बर्बर व्यवहार के बदले में ऐसा किया गया है तो भी यह शर्मनाक काईवाई थी।

परीक्षाओं में प्रथम आ कर कट्टू सातवीं कक्षा तक पहुंच जाता है। उसे मानिटर इसलिए नहीं बनाया जाता क्योंकि वह अछूत है, वर्ना यह उसका हक बनता था। पढ़ाई करते करते कट्टू नवीं कक्षा में आ जाता है। इसी बीच खेत में ज़ैलदार तख्तसिंह बचनी से ज़बरदस्ती करने की कोशिश करता हुआ बचनी के हाथों बुरी तरह जख्मी हो जाता है। इस बीच प्राकृतिक प्रकोप से गांव की फसल नष्ट होती है, गांव के कामरेड मास्टर को बदलवाने और कट्टू के दसवीं, श्रेणी तक पहुंचने का चित्रण है। शमिंदर और कट्टू की निकटता को शमिंदर की मां तो जातिवादी कारणों से पसंद नहीं करती थी, लेकिन कामरेड मास्टर के सिखाए वे दोनों आपस में पक्के दोस्त बन चुके थे। इस बीच जाति वाचक गाली देने से कट्टू स्कूल के पी.टी. मास्टर का हाथ पकड़ लेता है कि फिर ज़ैलदार तखतसिंह के भड़काने से लड़कों के संग उसे बुरी तरह मारता है, बस अब कट्टू पर मुसीबतों का पहाड़ टूटता है। वह दसवीं पास कर पाता तो नौकरी पर जाता लेकिन उसकी जिंदगी तो दुखांत की ओर बढ़ रही है। भगतू को बैल सींग मार जाता है। कट्टू को पुलिस वाले इस कत्ल केस में पकड़कर मार-मार कर रेलवे लाईन पर कट मरने के लिए फेंक जाते हैं। भगतू मर जाता है, उसकी मां पागल हो जाती है और मरते मरते कट्टू को बूढ़ा गैंगमैन उसकी कराहें सुनकर गाड़ी आने के पहले बचा लेता है। यही से उसकी जिंदगी नया मोड़ ले लेती है।

कट्टू बुर्जुग गैंगमैन द्वारा की गई सेवा से धीरे-धीरे सेहतमंद होकर अपने ननिहाल चला जाता है, जहाँ उसके पिता की मौत के बाद उसकी मां विक्षिप्त अवस्था में रह रही है। उधर कट्टू के अपने गांव में कट्टू परिवार पर किए अत्याचारों के बाद गांव में दलितों से बदसलूक बढ़ जाती है, अब स्कूल में दलित बच्चे इतने अपमानित किए जाते हैं कि कोई स्कूल में टिक ही नहीं पाता। गांव में दलित लड़की की इज्जत लूटने पर जमींदार के लड़के को पंचायत सिर्फ बीस रुपए जुर्माना करके छोड़ देती है। भगतू के मरने के बाद उसकी जगह मुर्दा मिट्टी को हासिल करते एक और दलित जमींदारों का मानसिक गुलाम बन जाता है

कट्टू ने अपने ननिहाल में जमींदारों के यहां काम करना शुरू किया और नौजवानों का क्लब बना कर उनमें जागृति लाने लगा। क्लब के आखिरकार और प्रगतिशील पत्रिकाएं लगवाई। कट्टू के साथ रहने से उसकी माँ की दशा भी सुधरने लगी। लेकिन इस गांव में भी छुआछूत और जाति उत्पीड़न के कारण समस्याएं पैदा हुई। 1957 का वर्ष आ गया था। सारे देश भर में 1951 की तर्ज पर गदर होने की अफवाहें फैली हुई थी। इस गांव के जैलदार दल्ल सिंह के मरने पर दलित भीतर से खुश लेकिन ऊपर से शोक का पाखंड कर रहे थे। कट्टू रात में अखबार पढ़कर सुनाते हुए आंध्रप्रदेश व बिहार में दलित हत्या कांडों की खबरे सुनाता है। इस बीच गुरूद्वारे के ग्रंथी की हरकतों के बारे में दूसरों से सुनकर व खुद उसके मुंह से सुनकर कट्टू उसे बुरी तरह मार बैठता है और पुलिस के हाथ पड़ने से पहले ही गांव से भागकर उत्तर प्रदेश के शहर में पहुंच जाता है। वहीं डाकिए की नौकरी पा जाता है। उसकी ठीक ठाक सरकारी नौकरी के कारण उसे किराए पर घर भी मिल जाता है और वहीं वह आठ साल गुज़ार देता है। गांव में उसकी मां उसके जाने से फिर पागल हो जाती है और कुछ ही दिनों में मर भी जाती है। यू.पी. के शहर में कट्टू मज़दूर बस्ती में रहता है और वहां भी वह जागृति लाने का प्रयास करता रहता है। अपने मृत पिता और चाचा के नाम संबोधित किंतु बिना भेजे खतों में भारत के पूंजीवादी समाज का विश्लेषण करता रहता है। इसी तरह करते करते 1965 का भारत-पाक युद्ध का वर्ष आ जाता है। लेखक युद्ध विरोधी है और भाइयों के बीच युद्ध पर आक्रोश व्यक्त करता है।

उपन्यास में नक्सलवादी आंदोलन का संदर्भ भी है। 1967 में शुरू हुए इस आंदोलन में कट्टू के गांव व ननिहाल के कुछ युवक भी शामिल होते हैं। उधर कट्टू का बचपन का दोस्त शमिंदर भी किसान आंदोलन का सक्रिय कार्यकर्ता बनता है। वह सी.पी.एम. के नजदीक है और नक्सलवादी आंदोलन का आलोचक है। इन्हीं दिनों पन्द्रह साल बाद शमिन्दर और कट्टू की भेंट यू.पी. के उसी शहर में होती है, जहां कट्टू डाकिया है और शमिंदर किसान यूनियन की गतिविधि में वहां आया है।

1939-40 में जन्मा कट्टू 1970-72 तक तीस बत्तीस वर्ष का युवक हो जाता है। इसी बीच वह वेश्यायों के मुहल्ले में जाकर वेश्यायों की दुर्दशा देखता है। वहाँ उसे माँ की शक्ल से मिलती लड़की मीना अच्छी लगती है, जिससे एक रात में सात दरिन्दों ने बार-बार सेक्स संबंध स्थापित कर घायल कर दिया है जेब से पैसे उसकी मालकिन को देकर कट्टू मीना से मानवीय व्यवहार करता है और उसकी सेवा करता है। दोनों में फिर संबंध बनते हैं और कभी कभार कट्टू उसके पास जाता है।

उसके बाद उपन्यास के घटनाक्रम में फिर एक मोड़ आता है, जब कट्टू नौकरी से इस्तीफा देकर अपने ननिहाल गाँव के आरक्षित क्षेत्र से आज़ाद उमीदवार के रूप में असेंबली चुनाव में कूद पड़ता है। साथ के अनारक्षित क्षेत्र से शमिंदर किसान यूनियन के प्रतिनिधि के रूप में चुनाव लड़ रहा है। इसके आगे उपन्यास के अंत तक 6 अध्यायों के

85 पृष्ठों में केवल चुनाव वर्णन है और इसके बहाने प्रोफेसर बघेल सिंह द्वारा देश के जातिवाद की व्याख्या की जाती है। इस व्याख्या में शोषकों द्वारा चलाई कहानी-चानो बानो भाईयों की कथा अर्थात चमार-बनिया एकता का मिथक तोड़ कर चानो-बानो एकता अर्थात् चमार गरीब किसान (जाट) की एकता की दलील दी गई है। निम्न जातियों के साथ उत्पीड़न के अनेकों चित्र उपन्यास में चित्रित हुए हैं और उपन्यास का अंत भी विजय पथ की ओर बढ़ रहे कट्टू की चुनाव से ठीक पहले ही चुनाव सभा में विरोधी दल द्वारा करवाई गई हत्या से होता है।

18.5 'मशालची' की रचनात्मक विशेषताएं

डॉ. गुरचरण सिंह राओ रचित 'मशालची' उपन्यास 37 अध्यायों में विभाजित है। यह लेखक का पहला ही उपन्यास है, यद्यपि इससे पहले डॉ. राओ के दो कहानी संग्रह छप चुके थे। इस उपन्यास की रचना भी डॉ. राओ ने 45 वर्ष की प्रौढ उम्र में की। डॉ.राओ दलित समस्याओं के प्रति सचेत रचनाकार थे और काफी हद तक उनका लेखन भी स्वतः स्फूर्त न होकर सचेत व पूर्व तैयारी से किया लेखन है।

औपान्यासिक सरंचना के स्तर पर 'मशालची' उपन्यास की कथावस्तु में जिज्ञासा और मनोरंजन का पक्ष कुछ हद तक कमज़ोर है। उपन्यास में दलित जीवन की व्यथा के सामाजिक-राजनीतिक विश्लेषण पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण कथा की स्वाभाविक गति में कुछ विचलन आया है। फिर भी उपन्यास के करीब पहले सौ पृष्ठ सशक्त हैं। इन पृष्ठों में ग्रामीण परिवार के दलित जीवन का अत्यंत प्रभावशाली व प्रमाणिक चित्रण हुआ है। दलित वर्ग के अभाव ग्रस्त जीवन गाँव के जमींदारों की क्रूरताएं, बेजमीन या गरीब किसानों की खराब आर्थिक स्थितियों के साथ-साथ दलित वर्ग के साथ-साथ छुआछूत के अपमानजनक व्यवहारों का लेखक ने कथा रचना में भगतू, बचनी, कट्टू परिवार व शमिंदर के जीवन के चित्रण से यथार्थ वर्णन किया है। उपन्यास की कथा के विकास में कई जगह लेखक की सायास योजना भी कथन को प्रभावित करती प्रतीत होता है। जैसे - नायक कट्टू का दसवीं श्रेणी पास करने से पहले ही जमींदारों/पुलिस द्वारा उसे लगभग मार दिया जाना, फिर एक और मारपीट के मामले (ग्रंथी को कट्टू द्वारा पीटे जाने पर) के बाद कट्टू का भाग कर यू.पी. चले जाना और वहां नौकरी प्राप्त कर 15-16 साल वही बिताना और फिर अचानक नौकरी छोड़कर असेंबली के चुनाव में आज़ाद उम्मीदवार बनना और जमींदारों के गुंडों के हाथो मारा जाना। उपन्यास की कथा में कट्टू के वेश्या मीना के यहां जाने के सन्दर्भ द्वारा स्त्री प्रवेश भी करवाया गया है, जो उपन्यास की कई अन्य स्थितियों की तरह उपन्यासकार द्वारा आरोपित संदर्भ जान पड़ता है। वास्तव में लेखक गरीब किसानों, वेश्या, स्त्रियों को दलित वर्ग का स्वाभाविक साथी मानता है, क्योंकि उनकी जीवन स्थितियां भी सामाजिक उत्पीड़न का शिकार हैं।

'मशालची' की कथावस्तु में कुछ हद तक ढीलापन तो है, लेकिन फिर भी उपन्यास पाठक की रूचि अंत तक बनाए रखने में कामयाब रहता है।

'मशालची' में लेखक ने पात्र बहुत अधिक नहीं रखे हैं। करतार सिंह अर्थात् कट्टू तो उपन्यास का दुखांत नायक है ही, उसके साथ मुख्य प्रात्रों में कट्टू की मां बचनी, कट्टू का दोस्त शमिंदर सिंह और उनके उत्पीडकों में ज़ैलदार तख्तसिंह व कट्टू के ननिहाल गांव के जमींदार दलसिंह आदि शामिल हैं। पुलिस का उत्पीड़न उपन्यास में चित्रित है, लेकिन कोई विशेष पुलिस अधिकारी या सिपाही पात्र ऐसा नहीं दिखाया जो उत्पीड़न में खास बदनाम हो। यह शायद सचेत रूप में हो कि पुलिस अपने संस्थागत चरित्र में ही उत्पीड़न का तन्त्र है। इसलिए इस उत्पीड़न तन्त्र का चेहरा कोई भी हो, किसी भी नाम से हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। दलित वर्ग को तो इस उत्पीड़न तन्त्र में पिसा ही जाना है।

इनके अतिरिक्त कट्टु का पिता भगतू, कट्टू की जान बचाने वाला बुर्जुग गैंगमैन, दलित वर्ग की मुक्ति का समर्थक प्रोफेसर बघेल सिंह आदि चरित्र भी कुछ प्रभाव छोड़ते हैं। वेश्या मीना भी एक अध्याय में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है।

उपन्यासकार का अधिक ध्यान कट्टू व शमिंदर के चरित्र व दोनों की दोस्ती पर अधिक केंद्रित हुआ है। उपन्यास के अधिकांश चरित्र प्रतिनिधिक यानि 'टाईप' चरित्र हैं। उनका व्यक्तिगत संस्कार व संस्करण भी उनके वर्ग प्रतिनिधि के दायरे में ही विकसित हुआ है। कट्टू यदि गांव के दलित (चमार) वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है तो शमिंदर गरीब व भूमिहीन किसान वर्ग का तो जैलदार तख्तसिंह या जमींदार दल सिंह बड़े किसान वर्ग के प्रतिनिधि हैं, जो दलितों व खेत मजदूरों का उत्पीड़न करते हैं। पुलिस उत्पीड़कों के हाथों का खिलौना है, जो शोषितों-दलितों के उत्पीड़न के काम आता है। आज़ादी के बाद भी भारतीय पुलिस को संविधान के कानून से कुछ लेना देना नहीं है। वह वक्त की सरकार और धनिक जमींदार-पूंजीपति वर्ग की सचेत एजेन्ट की तरह काम करती है।

कट्टू के चरित्र चित्रण में लेखक ने कहीं-कहीं बडी संवेदना का परिचय दिया है। कट्टू के साथ ही शमिंदर के चरित्र भी मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत पात्रो के रूप में उभरा है, जबकि जमींदारों का क्रूर व ज़ालिम पात्रों के रूप में।

18.6 'मशालची' उपन्यास का परिवेश

'मशालची' उपन्यास में पंजाब के मालवा क्षेत्र के ग्रामीण परिवेश को बडी सघनता से उघाड़ा है। इस परिवेश में 1940 और 60 में ज्यादा फर्क नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है कि उपन्यास का कथा समय में 1947 के बंटवारे की घटना का जिक्र केवल परीक्षा व प्रासंगिक रूप में है, वह भी बटवारे से पैदा हुए सांप्रदायिक तनाव व दंगों की निंदा के लिए। इससे यह भी पता चलता है कि हिंदुस्तान के तीस प्रतिशत के करीब दलित वर्ग के लिए। 1947 से पहले भी दलित उत्पीड़न था और जिसमें 1947 के बंटवारे का आजादी के बाद काले रंग के शासकों के राज में भी कोई कमी नहीं आयी थी।

परिवेश चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास काफी सशक्त है, क्योंकि उपन्यास का केंद्रीय उद्देश्य भी दलित उत्पीड़न के परिवेश को यथार्थ रूप में चित्रण करना ही है। यही इस उपन्यास का उद्देश्य भी है, जिसमें लेखक को पूरी सफलता मिली है।

'मशालची' में लेखक ने अपनी और दलित वर्ग की मुक्ति की विश्व-दृष्टि विकसित करने और उसे पंजाबी ढंग से चित्रित करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। उपन्यासकार जहां एक ओर मार्क्सवादी विश्व-दृष्टि से प्रभावित होकर समाज के वर्ग-भेद का तार्किक विश्लेषण करता है, वहीं मार्क्सवादी विश्लेषण में जाति उत्पीड़न का समुचित विश्लेषण न होने की कमी को भी रेखांकित करता है। डॉ. राओ इस जाति उत्पीड़न के विश्लेषण के लिए डॉ. आंबेडकर की विश्व-दृष्टि का सहारा लेते हैं और एक स्तर पर वे मार्क्सवाद और आंबेडकर चिंतन दोनों से प्रभावित नजर आते हैं। यही दृष्टि उन दिनों पूरे हिंदुस्तान में भी विकसित हो रही थी, जिसमें मार्क्सवाद-लेनिनवाद के साथ साथ आंबेडकर चितंन के संयोग के साथ भारतीय समाज के वर्ग व भेद जाति भेद के विश्लेषण पर जोर दिया जाता है।

कुल मिलाकर भारतीय दलित साहित्य की परंपरा में डॉ. गुरचरण सिंह राओ के उपन्यास 'मशालची' ने भी अपना एक स्थान बनाया है। उपन्यास के काया गुण यानि उपन्यास की भाषा शैली भी उपन्यास के विषय-वस्तु के अनुकूल होने के कारण उपन्यास का प्रभाव बढ़ाने में मददगार साबित हुई है। यद्यपि उपन्यास के पात्रों के संवादों में इस्तेमाल भाषा

इतनी अधिक स्थानीय रंग में रंगी है कि कई बार शहरी पाठक के लिए संप्रेषण बाधा आ सकती है। या फिर उपन्यास के अंत में पिचासी पृष्ठों में फैला चुनाव वर्णन जिसमें लंबे चुनावी भाषणों का विवरण भी शामिल है, जिनके माध्यम से उपन्यासकार ने अपनी जीवन दृष्टि का ऊंचे स्वर में प्रचार किया है। जिससे उपन्यास का कलात्मक स्तर कुछ कमज़ोर हो जाता है। लेकिन अपनी कतिपय कमज़ोरियों के बावजूद पंजाब के दलित वर्ग के उत्पीड़न के यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

18.7 सारांश

'दलित साहित्य : विशेष अध्ययन के अंतर्गत आपने इस इकाई में पंजाबी दलित साहित्य की प्रतिनिधि रचना के रूप में डॉ. गुरचरण सिंह राओ के उपन्यास 'मशालची' का अध्ययन किया। उपन्यास के अध्ययन से पहले पंजाबी दलित जीवन व साहित्य की पृष्ठभूमि का भी आपने परिचय प्राप्त किया। पंजाबी दलित साहित्य के अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आत्मकथा विधा के अंतर्गत रचे पंजाबी दलित साहित्य का प्रारंभिक परिचय प्राप्त हुआ।

डॉ. राओ के प्रथम उपन्यास 'मशालची' में मुख्य पात्र कटार सिंह अर्थात् कट्टू की जीवन कहानी के रूप मे पंजाब में दलित वर्ग के उत्पीड़न की यथार्थ कथा कही गई है। इकाई में अपने उपन्यास के कथासार के साथ-साथ उपन्यास की रचनागत विशेषताओं की भी जानकारी हासिल की है। 'मशालची' के अध्ययन के बाद आप पंजाबी भाषा की अन्य दलित रचनाओं का अध्ययन करने की ओर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

इकाई 19 'मशालची' में चित्रित दलित जीवन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 'मशालची' में दलित जीवन सन्दर्भ

19.3 'मशालची' : दलित जीवन की वास्तविकता

19.4 स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योपरांत दलित जीवन

19.5 'मशालची' : दलित मुक्ति संघर्ष की दशा और दिशा

19.6 सारांश

19.0 उद्देश्य

पंजाबी भाषा के 'मशालची' उपन्यास पर यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में आप 'मशालची' उपन्यास का कुछ और गहराई में जाकर अध्ययन करेंगे। उपन्यास के लेखक डॉ. गुरचरण सिंह रासो की उपन्यास की कथारचना संबंधी इकाई में परिचय पाने के बाद इस इकाई में उपन्यास के विषय के केन्द्रीयकरण यानि दलित जीवन सन्दर्भ के विशेष दायरे में 'मशालची' उपन्यास की पड़ताल की जाएगी। जैसा कि पहली इकाई में आपने देखा कि 'मशालची' उपन्यास आंरभ से अंत तक दलित जीवन पर ही केंद्रित है। दलित जीवन, विशेषतः पंजाब के गांवों के दलित जीवन के अधिकांश पहलुओं को लेखक ने उपन्यास में उघाड़ा है। उपन्यास परिवेश प्रधान है तथा परिवेश चित्रण में इसका सबसे सशक्त पक्ष दलित जीवन सन्दर्भों व दलित संघर्षों का बहुविध व विस्तृत चित्रण है। दलित संघर्षों की व्यावहारिक परिस्थिति व उसका सैद्धांतिक चिंतन दोनों पक्षों पर भी उपन्यासकार ने विशेष ध्यान दिया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों के दलित जीवन की यथार्थ स्थिति जान सकेंगे;
- पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों में दलित वर्ग की जीवन स्थितियों का यथार्थ आप अधिक विस्तार से समझ सकेंगे;
- विभाजन पूर्व और विभाजन उपरान्त के पंजाबी समाज में दलित जीवन स्थितियों का आकलन कर सकेंगे;
- उत्तर प्रदेश की मज़दूर बस्ती और निर्धन वर्ग की जीवन स्थितियों की झलक भी आप देख सकेंगे;
- पंजाब में दलित उत्पीड़न के खिलाफ उठ रहे विद्रोह व संघर्षों की शक्ल भी आप देख सकेगे;
- दलित वर्ग में शिक्षा के प्रसार व सामाजिक राजनीतिक जागृति का प्रभाव भी उपन्यास के माध्यम से जान सकेंगे; और
- पंजाबी ग्रामीण जीवन मे दलित उत्पीड़न के खिलाफ निर्धन किसानों व दलितों की एकता से संघर्ष द्वारा मुक्ति की दिशा और उसकी बाधाओ को जान सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

इस खंड की पहली इकाई में आपने पंजाबी दलित साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करते हुए डॉ. गुरचरण सिंह राओ के उपन्यास 'मशालची' की कथावस्तु व विशेषताओं की जानकारी हासिल की। चूँकि यह खंड 2 दलित साहित्य के विशेष अध्ययन से संबंधित है, इसलिए 'मशालची' उपन्यास का अध्ययन भी दलित जीवन सन्दर्भों व दलित जीवन की वास्तविकताओं के प्रसंग में ही किया जाना है। इसलिए उपन्यास की इस इकाई में 'मशालची' उपन्यास में अभिव्यक्त हुए इन विशेष पक्षों को रेखांकित किया जाएगा।

'मशालची' पंजाबी भाषा का संभवतः पहला ऐसा उपन्यास है, जो पूरी तरह पंजाबी समाज में दलित जीवन सन्दर्भों व उनके जीवन यथार्थ के चित्रण पर केन्द्रित है। पूरे उपन्यास में दलित जीवन से इतर और कोई चर्चा नहीं है। पंजाब के ग्रामीण समाज में दलित और जमींदार वर्ग के अंतःसंघर्षों को यह उपन्यास वास्तविकता के स्तर पर उघाड़ता है और उपन्यास में स्थितियों का आदर्शीकरण न करके जीवन के क्रूर व कटु पक्षों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। एक तरह से उपन्यास के परिवेश चित्रण के पक्ष को यह उपन्यास बहुत सशक्त ढंग से उपस्थित करता है। अतः इस इकाई में आप उपन्यास के इन पहलुओं के अध्ययन पर ध्यान देंगे।

19.2 'मशालची' में दलित जीवन सन्दर्भ

'मशालची' उपन्यास के लेखक डॉ. गुरचरण सिंह राओ ने दलित जीवन को जन्म से ही बहुत निकट से देखा व महसूस किया था। उनको जीवन में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला तो उन्होंने न सिर्फ एम.बी.बी.एस तक की उच्च शिक्षा हासिल की, वे आर्मी में कर्नल के पद से रिटायर होकर उन्होंने एक बड़े अस्पताल की भी स्थापना की। अतः स्पष्ट है कि डॉ. राओ ने अनेक स्तरों पर दलित जीवन को देखा। डॉक्टर राओ के जीवन अनुभवों में भी गरीब व अभावग्रस्त जीवन जीने वाले लोगों की जीवन स्थितियों का अनुमान होता है। लेकिन डॉ. राओ तो वैसे भी सचेत लेखक थे और उन्होंने दलित मुक्ति के लिए खूब चिंतन भी किया था। इसलिए उपन्यास में उन्होंने दलित जीवन सन्दर्भों को चित्रित करते हुए वास्तविकता को आधार बनाया है और साथ ही इन परिस्थितियों को बदलने की दिशा बताते हुए मुक्ति संघर्षों की दशा के यथार्थ को भी बयान किया है।

उपन्यास का समर्पण ही उपन्यास के विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने वाला है। उपन्यास 'चीतो व जानो भाईयों के नाम' समर्पित है। उपन्यास के विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्य में चानो यानि चमार और जानो यानि जाट वर्ग की एकता की परिकल्पना शामिल है।

'मशालची' उपन्यास का आरंभ द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ यानि 1939 में होता है। उस वर्ष जब दलित भगतू की पत्नी बचनी एक बेटे को जन्म देती है तो बचनी से ज्यादा खुशी भगतू को होती है। गाँव के जमींदार ज़ैलदार तख्त सिंह की गुलामी में बंधा भगतू तो बेटे के जन्म से एक और गुलाम के सहारा बनने की कल्पना करता है, बचनी की कल्पना बेटे को इस गुलामी से मुक्ति के लिए उसे शिक्षा दिलाने में है।

उपन्यास का आरंभिक सन्दर्भ गरीब दलित भगतू के घर बेटा पैदा होने की खुशी मे है, लेकिन गरीब की इस खुशी को ज़ैलदार तख्त सिंह की औरत गंदा सड़ा गुड़ देकर और बधाई का एक शब्द भी न कहकर, नष्ट कर देती है। उपन्यासकार ने उपन्यास के अगले ही अध्याय में दृष्टिहीन या दलित वर्ग से सरकारी काम के लिए बेगार करवाने का चित्रण किया है। यथार्थ जमींदार और सरकार दोनों के शोषक और क्रूर रूप को उघाड़ा है। बेगार अर्थात् बिना पैसा दिए जबरदस्ती मज़दूरी करवाने में दलित ओरतों को भी नहीं छोड़ा जाता

था। दिन-रात मज़दूरी या काम करने के कारण दलित मर्द-औरतों के हाथों-पावों में सख्ती आ जाती थी और उनकी कोमलता खत्म हो जाती थी। दलित मर्दों से जमींदार काम ज्यादा लेने के लिए उन्हे अफिम खाने की आदी बना देते थे, जिससे वे शरीर के भीतर से ज़ंक की तरह खाए जाय और काम करते करते थोड़ी उम्र में ही बूढे व बीमार होकर मर जाते हैं। जमींदार दलित मज़दूरों को छोटी सी रकम भी ब्याज दर पर देकर उनका आर्थिक-सामाजिक शारीरिक शोषण करते हैं, यहाँ तक कि उनकी औरतों के दैहिक शोषण को भी अपना हक समझते हैं। गरीब भगतू की अच्छी दुधारू भैंस को जमींदार कर्ज के बदले बंधवा लेता है। जबकि उसकी पत्नी नवजन्मे बालक के लिए दूध के लिए तड़पती रहती है।

बचनी के बेटे का नाम कटार सिंह अर्थात कट्टू रखा। रखना तो वह करतार सिंह चाहती थी, लेकिन ऐसे नाम जमींदारों - सरदारो के लिए 'सुरक्षित' थे। कट्टू के आठ साल के होने पर यानि 1947 के आस पास बचनी उसे स्कूल में दाखिल करवाने की ज़िद पकड़ती है। सरकारी स्कूलों में पहली कक्षा में छह वर्ष का बालक दाखिल होता है। लेकिन दलित वर्गों में न तो इतनी जागृति थी और न ही उनके बचपन में मध्यवर्गीय घरों की तरह पढ़ाई की ओर ध्यान दिया जाता है। कट्टू का पिता भगतू उसे नहीं पढ़ाना चाहता। वह तो आठ साल की उम्र में ही बेटे से जमींदारों की गुलामी पर उतारू है। यथार्थ उपन्यास में बाल-मज़दूरी की जीवन स्थितियों का भी चित्रण है। दिलचस्प बात यह भी है कि उपन्यास के घटनाक्रम में 1947 के बटवारे व आज़ादी का चित्रण है, लेकिन गुलामी दलित समाज के लिए सिवाय सांप्रदायिक होने की स्थिति देखने में बटवारे या आज़ादी के कोई और सामने नहीं है। वहां 'आजादी की खुशियां' मनाने जैसी कोई घटना नहीं है। 'मशालची' में भी मुसलमानों के चले जाने, उनके घरो को लूटने का कट्टू को अपने दोस्त नूरे के चले जाने के दुःख के इलाव और कुछ जिक्र तक नहीं है। अगर स्कूल में कट्टू को दाखिल तो कर दिया जाता है, लेकिन उससे छुआछूत बरतने व उसे दूसरे छात्रों से अलग बिठा कर अपमानजनक व्यवहार करने का चित्रण है।

1947 का वर्ष गुजरने पर भी गांवों में दलित जीवन स्थितियों में कोई अंतर नहीं आया है, बल्कि दलितों जमींदारों व पुलिस के अत्याचार पहले से कुछ ज्यादा हो जाते हैं। परीक्षाओं में हमेशा प्रथम रहने वाले कट्टू के साथ प्राइमरी के बाद मीडिल स्कूल में भी वैसा ही छुआछूत का अपमानास्पद सलूक किया जाता है। दलित मुहल्लों में अज्ञानता के कारण दलित स्त्रियों के आपसी कलह और लड़ाई झगड़े का भी लेखक ने यथार्थ चित्रण किया है।

ज़ैलदार द्वारा खेतों में बचनी को पकडकर उसके साथ बलात्कार की कोशिश करने व बचनी द्वारा उसे घायल करके छूट कर भागने की घटना के चित्रण द्वारा लेखक ने जमींदारों द्वारा दलित स्त्रियों के दैनिक शोषण की व्यापकता को उघाड़ा है। बचनी तो विरोध करती है, लेकिन ज्यादातर औरतें विरोध नहीं कर पातीं और जमींदारों के इस क्रूर सलूक को अपनी जिंदगी की हकीकत मान कर बर्दाश्त करती हैं।

कट्टू को स्कूल में प्रथम आने पर सबसे अधिक मेधावी छात्र होने पर भी मॉनीटर न बनाया जाना भेदभाव के प्रमाण के रूप में चित्रित है।

पंजाब के गाँवों में जागृति फैलाने का काम अक्सर गाँव के स्कूल का मास्टर करता है। कट्टू के स्कूल में भी कट्टू और शमिंदर को एक कामरेड मास्टर समानता की प्रथा का विश्लेषण करते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन में हिस्सा लेकर समाज बदलने की शिक्षा देता है।

दलित बच्चा पढ़ लिख कर नौकरी पाकर सामाजिक स्तर पर 'उच्च' वर्गों के बराबर न पहुंच जाए इसलिए उस पर जान लेवा हमला किया जाना। इस हकीकत को दसवीं श्रेणी में पढ़ते कट्टू की हत्या के प्रयास द्वारा उधड़ा गया है। भारतीय रेलवे गैंगमैन कट्टू की जान बचाकर निर्धन वर्णों में मानवीय करुणा की व्याप्ति को रेखांकित करता है। गैंगमैन की सेवा से स्वस्थ होकर कट्टू मां के पास ननिहाल चला जाता है।

कट्टू के ननिहाल में रहते हुए क्लब बनाकर जागृति फैलाने के सामूहिक प्रयास व संगठन द्वारा ही संघर्ष और मुक्ति के रास्ते को उपन्यास में चित्रित किया गया है। बाद में शहरी बस्ती में रहकर कट्टू जीवन अनुभवों द्वारा दलित मुक्ति का रास्ता तलाशता है और पन्द्रह साल बाद किसान कार्यकर्ता रूप में मिला उसका बचपन का दोस्त शमिंदर उसे मुक्ति का रास्ता दिखलाता है। व्यवस्था के भीतर मिली रियायतों का उपयोग करते हुए आरक्षित सीट से कट्टू चुनाव लड़ता है और अपने ही बिरादरी भाईयों के हाथ शोषक वर्गों द्वारा कट्टू चुनाव होने से एक दिन पहले मरवा दिया जाता है। दलित वर्गों को शोषक जमींदारों द्वारा इस तरह अपने ही भाईयों व मुक्ति योद्धाओं के खिलाफ इस्तेमाल किया जाना एक वास्तविकता है। कटू के जीवन का यह दुःख भरा अंत इस कट्टू यथार्थ को 1985-86 में रेखांकित करता है कि दलित वर्ग अभी संघर्ष् के रास्ते में सम्मिलित होकर आगे नहीं बढ़ा है। आज स्थितियां बदली है।

कुल् मिलाकर उपन्यासकार ने 'मशालची' उपन्यास में पंजाबी ग्रामीण समाज में दलित जीवन के प्रायः सभी सन्दर्भों को तथ्यात्मक व कलात्मक रूप में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है।

19.3 'मशालची' : दलित जीवन की वास्तविकता

'मशालची' के लेखक डॉ. गुरचरण सिंह राओ पेशे से मेडिकल डॉक्टर थे, लेकिन उन्होंने एक सचेत कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। लेखक उनकी स्वतः कीर्ति प्रतिभा का परिणाम भी हो सकता था, लेकिन अपनी लेखन-प्रतिभा के साथ साथ डॉ. राओ ने अपनी रचनाओं में बौद्धिक विमर्श को भी एक जरूरी हिस्सा बनाया है, विशेषतः दलित जीवन की वास्तविकता के चित्रण के लिए। इस दृष्टि से देखा जाए तो डॉ. राओ एक सोद्देश्य लेखक के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिनका उद्देश्य अपने लेखन के ज़रिए दलित वर्ग के जीवन यथार्थ का एक सचेत दृष्टि से चित्रण करना तथा अपनी रचनाओं द्वारा अपने पाठकों को एक दिशा देना है। 'मशालची' उपन्यास में दलित जीवन की वास्तविकता के चित्रण द्वारा वे अपना यह उद्देश्य भली भांति पूरा करते हैं।

'मशालची' उपन्यास के आरंभ से अंत तक लगभग हर शब्द में दलित जीवन की व्यथा-कथा कही गई है। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक की पूरी कथा उन्होंने दलित पात्र कट्टू के द्वारा उपन्यास के आरंभ से अंत तक समेटी है। यह जीवन समाज के अन्य वर्गों के साथ ही किया जाता है, लेकिन समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा दलित वर्ग का जीवन सर्वाधिक अभावयुक्त व दुःखों और कष्टों से भरा है। उसे जीवन में हर पल मुश्किलों व संघर्षों का सामना करना पड़ता है।

उपन्यास के आरंभ में दलित परिवार में जन्म का दृश्य है - कट्टू के पैदा होने पर न कोई गीत गाए जाते हैं, न डॉक्टर-नर्स बुलाए जाते हैं और न उसे अस्पताल ले जाया जाता है। बचनी के बेटा पैदा होने का भगतू को तो पता भी कुछ देर बाद लगता है और दलित परिवार में तो बेटे के जन्म की खुशी मनाने के लिए मुहल्ले में बांटने के लिए गुड़ तक नहीं है। जमींदार के यहां से गंदा काला गुड़ भी अपमानजनक तरीके से ही मिलता है। कट्टू के पालने में भी कुछ खास नहीं है, बस ऐसे ही पलता जाता है और सात-आठ साल का हो जाता है।

शिक्षण संस्थाओं में व्यवहार - बचनी जिद करके कट्टू को स्कूल में दाखिल करवाती है- स्कूल सरकारी होने से हेडमास्टर को कट्टू को दाखिल तो करना पड़ता है, लेकिन मानसिकता तो वही सामंती और जातिवादी है। इसलिए उसे अलग बिठाया जाता है और उससे छुआछूत का व्यवहार भी किया जाता है। जमींदारों के लड़के किसी भी बहाने उसे तंग करते व मारते हैं। मास्टर भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। तब भी शिक्षा को मुक्ति मार्ग समझ कर कट्टू पढ़ता चला जाता है और क्लास में गरीब जाट किसान का बेटा शमिंदार उसके साथ मानवीय व्यवहार करता है या बहुत शुरू में ही क्लास में मुसलमान लड़का नूरा उसका दोस्त था। कट्टू इन सब स्थितियों का सामना करते हुए दसवीं पास करने पर आरक्षण नीति में कट्टू को क्लर्क टाइपिस्ट की नौकरी आसानी से मिल जाती और उसकी मां बचनी की ज़मीदारों की गुलामी से छूटने की इच्छा पूरी हो जाती, लेकिन दलित वर्ग की ज़िंदगी कभी इतनी आसानी से सुख-सुविधाएँ नहीं पा सकती। कट्टू भी नौ सालों के लगातार दबावों भरे जीवन की कष्टुताओं को समेटे अब उतना सहनशील नहीं रह पाता, जितना स्कूल शिक्षा के आरंभिक वर्षों में वह रहता था। कट्टू को जमींदारों द्वारा पुलिस की मदद से मारने की योजना बनती है। उसे झूठे केस में फंसा कर वहशी पुलिस उसे पुलिस चौकी पर इतनी अधिक यत्रंणा देते हैं कि वह बेहोश हो जाता है। उसे बेहोशी की अवस्था में रेल्वे लाइन पर फेंक दिया जाता है, ताकि वह बेहोशी की हालत में कटकर मर जाए और मामला आत्महत्या का बने। लेकिन कई बार जिंदगी भी मेहरबान हो जाती है। स्वयं झोपड़ी में रह रहे बुजुर्ग गैंगमैन की नजर उस पर पड़ जाती है और वह उसे बचा लेता है। लेकिन इस भयानक हादसे में कट्टू का पिता भगतू तो मर ही जाता हैं मां बचनी विक्षिप्त हो जाती है। अंततः कट्टू की शिक्षा भी बीच में ही छूट जाती है और उसने गाँव के ज़मीदारों के यहां बाप की तरह ही मज़दूरी करनी पड़ती है। शिक्षा द्वारा मुक्ति का कट्टू और बचनी के सपने का चकनाचूर होना ही दलित जीवन की वास्तविकता है यद्यपि धीरे-धीरे बाद में हालात बदले भी और पंजाब में दलित वर्ग ने शिक्षा प्राप्त कर ऊंची नौकरियां हासिल करने में सफलता पाई।

शहरी क्षेत्रों में दलित स्थिति : गांवों की अपेक्षा शहरी क्षेत्र के दलित वर्ग के साथ सलूक में थोड़ा सा फर्क है, इसका पता कट्टू को पंजाब से भाग कर यू.पी.चले आने व वहां के एक कस्बे में डाकिए के रूप में नौकरी करते हुए मजदूर बस्ती मे रहने से चलता है। यहाँ बस्ती में अधिकारों के प्रति जागृति थोड़ी सी ज्यादा है। यहाँ ट्रेड यूनियन की गतिविधि भी है, जो समाज में जनतांत्रिक अधिकारों संबंधी कुछ सजगता पैदा करती है। यही पर पन्द्रह साल रहने के बाद कट्टू को अपना बचपन का स्कूल का दोस्त शमिंदर मिलता है, वह अब किसान कार्यकर्त्ता है और जो वामपंथी विचारों से जुड़ा है।

संसदीय प्रणाली में दलित भागीदारी : असेंबली चुनाव में शमिंदर की प्रेरणा पर कट्टू पंजाब के अनारक्षित क्षेत्र से और किसान यूनियन के रूप में शमिंदर चुनाव लड़ रहा है दोनो एक दूसरे की मदद कर रहे हैं। लेकिन कट्टू की बढ़ती लोकप्रियता इलाके के जमींदारों को बुरी लगती है। वे पहले उसे मनाने और उसके न मानने पर रास्ते से हटाने का षडयंत्र रचते हैं और चुनाव से पहले एक चुनावी सभा में कुछ दलित वर्ग के लोगों द्वारा कट्टू को मरवा देते हैं, पर उपन्यास की कथा का अंत होता है। कट्टू के जन्म से उपन्यास शुरू और कट्टू की मृत्यु से उपन्यास का अंत होता हैं।

उपन्यास की कथा के कालखंड 1939-40 से 1970 -71 यानि बीस वर्ष के चित्रित सामाजिक जीवन के चित्रण से दलित जीवन की जो वास्तविकता उघड़ कर सामने आती है, वह कोई सौन्दर्यमूलक चित्र प्रस्तुत न कर, जीवन की सच्चाइयों का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करती है। पंजाब के ग्रामीण जीवन में जन्म से मृत्यु तक दलित वर्ग किन-किन

स्थितियों से गुजरता है, उन सभी स्थितियों की वास्तविकता इस उपन्यास में चित्रित हुई हैं, जो लेखक का उद्देश्य भी था।

19.4 स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योपरांत दलित जीवन

'मशालची' उपन्यास का आरंभ 1939 से और अंत 1971 के आम चुनाव व असेंबली चुनाव के आस पास होता है। 1935 से 1947 तक का काल अंग्रेंजों का काल है और 1947 से लगभग 1971 तक कांग्रेस पार्टी के शासन का समय है। इसमें 1939 के आसपास द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने की खबर और कट्टू के जन्म दोनों का चित्रण एक साथ हुआ है। इसके साथ ही गांवों में दलितों से सरकारी अफसरों द्वारा बेगार करवाने का जिक्र है लेकिन बेगार उनसे गाँव के वर्चस्ववादी जमींदार भी करवाते है। जमींदार लोग दलित स्त्रियों का विशेषतः सुंदर दलित स्त्रियों का दैहिक शोषण भी करते हैं।

1939 से 1947 के वर्ष में आठ वर्ष की आयु में कट्टू के स्कूल में दाखिल होने की घटना तक उपन्यास में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासनकाल का चित्रण है। अगस्त 1947 का उपन्यास में चित्रण गाँव से मुसलमानों के विस्थापन और उनके 'पाकिस्तान' चले जाने के दृश्यों तक सीमित है। यहां तक कि 'पाकिस्तान' कहा है और मुसलमान वहां क्यों जा रहे हैं, इस बात की भी सजगता गाँव के दलित वर्ग को नहीं है। उनको सिर्फ इतना ही पता है कि 'मौनूसिंह' पाकिस्तान रातों रात ही बना दिया है। और इसके बाद कट्टू के दूसरी-दूसरी तीसरी श्रेणी में होने अर्थात् 1950 के चित्रण में पिछले चित्ररण से कोई अंतर नजर नहीं आता। न सामाजिक स्तर पर न राजनीतिक स्तर पर और न आर्थिक स्तर पर। दलित वर्ग का शोषण और अपमान बदस्तूर जारी है, इसलिए उपन्यास का कोई पात्र 'आजादी' शब्द का इस्तेमाल ही नहीं करता। उपन्यास की कथा के घटनाक्रम में जैसे 1947 के बंटवारे और आज़ादी की ऐतिहासिक घटना का कोई मायना ही नहीं है। यहाँ तक कि दलित वर्ग से जुडे सवालों पर डॉ आंबेडकर, महात्मा गांधी या जवाहरलाल नेहरू किसी के भी विचार उभर कर सामने नहीं आते।

लेकिन उपन्यास में वर्णित संसदीय आम चुनाव या असेंबली चुनाव में कट्टू की। उम्मीदवारी और जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के ही हाथों करवाई उसकी हत्या से इस राजनीतिक तंत्र में भी दलितों को शोषण और दमन व दलितों को मिले आरक्षण लाभों को भी ऊपरी और खोखला दिखाया है। यह जरूर है कि चुनाव के प्रसंग में राजनीतिक जीवन में दलितों की बढती भागीदारी, उनमें पैदा होती राजनीतिक चेतना व सामाजिक सजगता के चित्रण द्वारा उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योपरांत भारत में देर से ही सही, लेकिन दलित जागृति के संकेत ज़रूर दे दिए हैं। उपन्यास रचना के करीब दो दशक बाद तो स्थिति में और भी बदलाव आया है। दलित वर्ग ने अपनी संगठन और एकता की शक्ति पहचानी और अब किसी भी राज्य के किसी भी गांव शहर में जमींदारों व पुलिस के दमन को वे चुपचाप बर्दाश्त नहीं करते व ज़बरदस्त प्रतिरोध करते हैं। जिसमें कई बार हिंसा की घटनाएं भी होती हैं, जैसे अभी हाल में पंजाब के जालंधर के नजदीक तल्हण गाँव की घटनाओं में हुआ।

'मशालची' उपन्यास में डॉ. राओ ने स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योपरांत दोनो ही स्थितियों में दलितों के लिए कोई विशेष अंतर न होने की भीषण वास्तविकता से रूबरू किया है। इसलिए 1947 की ऐतिहासिक घटना का 'मशालची' की कथा के घटनाक्रम में कोई विशेष चित्रण नहीं हुआ है और इसी से यह भी पता चलता है कि उपन्यासकार स्वयं भी इस ऐतिहासिक घटना को दलित जीवन संदर्भ में कोई महत्व नहीं देता।

19.5 दलित संघर्ष की दिशा और दशा

'मशालची' उपन्यास के लेखक डॉ. गुरचन सिंह राओ एक सजग और सचेत रचनाकार थे। उनकी साहित्य रचना केवल आत्माभिव्यक्ति नहीं थी, वह दलित वर्ग की वास्तविकताओं को चित्रित कर उनके लिए मुक्ति के रास्ते की तलाश का हिस्सा थी। साहित्य रचना उन्होंने दलित मुक्ति की विश्व-दृष्टि से संपन्न होकर की, इसलिए 'मशालची' की भूमिका से लेकर उपन्यास के अंत तक उनकी विश्व-दृष्टि स्पष्ट नजर आती है। अपने उपन्यास लेखन का उद्देश्य वे उपन्यास के आरंभ के दो शब्द में कहते है - 'बचपन की उपरोक्त (घूरे के ढेर को छान कर मोती तलाशने) रूचियों से ही मुझे हमारे समान के 'राख' अथवा 'घूरा' बनाकर रखे तथा कथित निम्न वर्गों संबंधी यह उपन्यास लिखने के लिए मजबूर किया है'। (दो शब्द - लेखक की ओर से - पृ.14)

उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने उपन्यास के अंत में अपने ही वर्ग-भाइयों के हाथों मारे गए अपने नायक के दुखांत के लिए भी स्पष्टीकरण दिया है- स्थिति का कुत्सित व्यंग्य या सितम यही निपटता है कि न तो खुद कट्टू को ही, अपनों के ही हाथों मारे जाने की कोई आस-उम्मीद हो सकती है बल्कि उसके अपने भी उसे जान से मारने के लिए सच्चे दिल से तैयार नहीं हो सकते। बस! उन बेचारे बेसमझों ने तो समय के जालिमों के कहने पर महज एक फालतू बेगार ही पूरी की है, तभी तो अंत समय उपन्यास का नायक अपनों की ही 'फूलों की वर्षा' से मरने से पहले, जैसे अपने हाथ में पकड़ी मशाल ऊंची करके, अपनों के ही पीछे छिपे बैठे सच्चे समाजवाद विरोधी तत्त्वों के घिनौने चेहरों को बेनकाब करने का प्रभाव देते दिखाया गया है।' (पृ.15)

लेखक ने इस बात को समझा और आत्मसात किया कि केवल नारेबाज़ी या झूठे आशावाद जिससे वह कट्टू की जीवन संघर्षों में जीत दिखा सकता था, की बजाय दलित वर्ग के जीवन सन्दर्भों को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना जरूरी है। चाहे यह यथार्थ कितना ही क्रूर, कटु व कुसिसत क्यों न हो। लेखक ने यथार्थ की प्रस्तुति में तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए उन्हें सत्य जैसी प्रमाणिकता प्रदान की है। किंतु लेखक ने उपन्यास के अंतिम 85 पृष्ठों में दलित मुक्ति का जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है। उपन्यास के अंतिम छह अध्याय केवल असेंबली चुनाव के विवरण पर केंद्रित हैं और इन्हीं में दलित वर्ग की मुक्ति का विश्व-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। हालांकि उपन्यास के कुछ और प्रसंगों में भी लेखक की जीवन-दृष्टि व्यक्त हुई है जैसे 1947 के सांप्रदायिक दंगों की व्याख्या करने में।

उपन्यास के छठे अध्याय के आरंभ में उपन्यासकार ने कहा कि 'यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं' कि समूचे रूप में एशिया के लोग असंतुलित रुचियों के मालिक हैं। एक समय यह भाई-भाई होते हैं और दूसरे समय दूसरे के केश उखाड़ने लग जाते हैं।' (पृ. 50) 1947 के सांप्रदायिक दंगों के सन्दर्भ में कही यह बात 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के माहौल पर भी लागू होती थी।

उपन्यासकार ने 1947 के सांप्रदायिक दंगों की बड़ी आलोचना करते हुए सभी धर्मों के धार्मिक मूलवादी नेताओं को इनके लिए जिम्मेदार ठहराया है। भारतीय पंजाब में मुसलमानों के साथ क्या सलूक किया गया, इसके बारे में डॉ. राओ लिखते हैंः

'मुसलमानों की बहू-बेटियों को जिन्हें केवल दो दिन पहले हिंदू सिख अपनी ही बहू-बेटियां समझते थे, की इज्जत सरे-बाज़ार हिंदुओं और सिखों द्वारा लूटी गई। बाद में नौजवान लडकियों को नंगा कर हल्लों के आगे जोता गया और मना करने वाली (स्त्रियां) की छातियाँ व गुप्तागों को बेरहमी से काट डाला गया।

पवित्र ग्रंथों व कुरान-शरीफ के श्रद्धालुओं ने धर्मों का वह ज़नाजा निकाला - जिसकी मिसाल संसार के किसी भी और देश या धर्म से बारीकी से ढूंढे भी नहीं मिलती।'

'अपने ज़ालिम अनुयायियों के साथ जैसे सन् 1947 में शुभ कर्मन बिना दोनों रोए के उसूल पर 'भले लोग' पूरे उतरे थे।' (पृष्ठ 56)

लेखक के मानवीय व धर्मनिरेपेक्षतावादी विचार इन पंक्तियों से स्पष्ट ज़ाहिर होते हैं।

कट्टू को समाज में भेदभाव की स्थिति संबंधी हो रही जागरूकता को लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है - 'आहिस्ता आहिस्ता उसका यकीन पक्का हो गया लावारिस पड़ी ज़मीन पहले लोगों ने अपने लाठी के बल से घेर ली होगी और बाद में पुश्त-दर-पुश्त मिलीभगत चलती आई होगी। कभी वह सोचता - यह ऊंच नीच का भेद भी तो आदमियों ने ही डाला होगा - वर्षों बाद जन्मे बच्चे की जात कौन सा उसके माथे पर उकेरी होती है- यो हर नया जन्मा बच्चा अ-धर्मी अथवा धर्महीन ही होता है - धर्म का संसार में आना मनुष्य के बाद का ही है...' (पृ. 142)

इस प्रकार 'मशालची' के नायक को जीवन के विकास के भौतिकवादी विचार ज्यादा प्रभावित करते हैं, जो लेखक के अपने विचार हैं और जिन्हें लेखक ने उपन्यास की कथा के माध्यम से व्यक्त किया है। कट्टू को यह भी लगने लगता है कि देश के मज़दूर और किसान लोग तो आज भी उतने ही गुलाम हैं, जितने अंग्रेजों के समय होते थे। क्या हम लोग सचमुच ही आज़ाद हैं? (पृ.151)

आज़ादी संबंधी ऐसे ही कुछ ओर वाक्य उपन्यास में मिलते हैं। जैसे कट्टू द्वारा आंध्र प्रदेश और बिहार में दलितों पर हुए ठाकुरों/ज़मीदारों द्वारा किए भयानक अत्याचारों के समाचार पढ़े जाने पर एक दलित की यह प्रतिक्रिया-भगत सिंह और उधम सिंह आदि तो अंग्रेजों को ही रोते थे, यह अपने वाले चैन चुरावे तो उनके भी आगे निकलकर..... ' (पृ.171)

इन जमींदारों किरदार संबंधी एक और दलित पात्र कहता है - 'यही मुखबरियां करते होते थे अंगेजों के पास...उन लोगों की जो अंग्रेज़ो को निकालना चाहते थे....सराय वाले कर्तार सिंह (करतार सिंह सराया) आदि को इन्होंने ही तो फाँसी चढ़वाया था, मुखबरी करके।'(पृ.172)

यू.पी.के कस्बे में रहने के दौरान कट्टू के भीतर और अधिक जागृति आती है और उसे भीतर से महसूस होने लगता है कि हम भारत के सभी तथाकथित छोटे लोग (किसान-मज़दूर) एक महायुद्ध करने जा रहा हैं, जिसके द्वारा हम मनु द्वारा बनाई भारतीय समाज की इमारत को ध्वस्त कर देंगे।' (पृ. 206)

1965 के भारत-पाक युद्ध की भी लेखक कड़ी निंदा करता है। संभवतः उस समय लेखक युद्ध सेना में अधिकारी थे, एक फौजी के खत के ज़रिए लेखक ने कहा है कि - ऐसा लगता है कि यह सब इंतहाई सितम हो रहे हैं। हमने हिंदुस्तान का और हिंदुस्तान ने पाकिस्तान का भला क्या बिगाड़ा है? हम भी गरीब हैं और हिंदुस्तानी भी गरीब है। हम भी गुलाम थे और हमारे साथ वह भी गुलाम रहे हैं। फिर यह समे भाई-भाई ही आपस में लड़-लड़ मरते हैं?' (पृ.213)

युद्ध संबंधी ऐसा साफ मानवीय दृष्टिकोण बहुत कम लेखकों में मिलता है।

उपन्यास रचना के काल में देश में नक्सलवादी आंदोलन भी उभरा, इस आंदोलन संबंधी भी लेखक के सचेत विचार उपन्यास के माध्यम से व्यक्त हुए हैं- 'जनतंत्र की मुछई भारत की प्रांतीय सरकारों ने नक्सलियों की असंतुष्टता के कारणों की पड़ताल करनी मुनासिब

न समझी। नतीजन कई गरीब परिवारों के रोशन दिमाग बच्चे उस आंदोलन की बलि चढ़ गए। बद किस्मती से नक्सली आंदोलन जन (साधारण की) आंदोलन न बन सका। ' (पृ. 228)

शमिंदर के साथ नक्सली आंदोलन की चर्चा में लेखक का विचार था कि 'काश वे जोशीले कुछ होशमंद भी होते।'

'मशालची' उपन्यास में अध्याय 32 से 37 तक अर्थात् पृष्ठ 259 से 344 यानि उपन्यास के अंत तक केवल असेंबली चुनाव का विवरण है, जिसमें कट्टू ननिहाल के आरक्षित क्षेत्र से आजाद उम्मीदार और शंमिदर साथ के क्षेत्र से किसान यूनियन के नुमायंदे के रूप में चुनाव लड़ रहा है। दोनों में विचारधारात्मक स्तर पर एकता है और दोनों की चुनाव सभाओं में दलित विश्लेषक प्रो. बघेल सिंह बग्गा दलित प्रथा के ऐतिहासिक सन्दर्भों की व्याख्या करते हुए आधुनिक समय मे दलित मुक्ति संघर्ष और मुक्ति के प्रश्न पर लेखक के दृष्टिकोण का उसकी विश्व दृष्टि को व्यक्त करते हैं। लेखक की विश्व-दृष्टि को समझने के लिए उपन्यास का यह भाग महत्वपूर्ण है। हालांकि औपन्यासिक कला की दृष्टि से अपने गैर-ज़रूरी विस्तार के कारण यही मात्र उपन्यास की कमज़ोरी भी बनता है।

अपनी चुनाव सभाओं में पहले तो कट्टू भारत की राजनीतिक स्थिति पर अपनी दृष्टि स्पष्ट करता है। कट्टू यानि लेखक के अनुसार भारत की तीन रंगों वाली शासक पार्टी के बडे से बडे मक्कार, कमीने, चापलूस, जी-हजूरी, बेशर्म और दिठ लोग भरे पडे हैं। दो रंगी पार्टी व्यापारियों के हितों की पार्टी है और यह अपना त्रिशूलधारी विंग भी सांप्रदायिक दंगे करवाने के लिए तैयार रखती है। एक रंगी पार्टियों में वह नीले-पीले रंग की पार्टी को भूमिपति और जमींदारों की पार्टी बताता है। रक्तरंगी पार्टी को वह दो टुकड़ों में बंटी बताता है। कुल मिलाकर वह इन सभी पार्टियों को भारत के शोषक वर्ग और सत्ता का हिस्सा तथा दलित विरोधी पार्टियां घोषित करता है।

कट्टू अपनी उम्मीदवारी को किसान यूनियन से जोड़कर रखता है और अपना लक्ष्य आर्थिक और सामाजिक बराबरी में देखता है। परंपरा में वह कर्तार सिंह सराभा, भगत सिंह और सुभाष चंद्र बोस को प्रेरणा स्रोत मानता है। कामरेड के भीतर वाली जातिवादी प्रवृति पर चोट करते हुए वह एक ऐसे प्रसिद्ध वामपंथी पंजाबी लेखक का उदाहरण देता है, जिसने खूब विद्रोही साहित्य लिखा, लेकिन उच्च जातीय लेखक की बेटी ने जब निम्न जाति के अपने पुरुष मित्र से शादी करनी चाही तो उसे (बेटी को) कत्ल करवा दिया।

प्रो. बघेल सिंह बग्गा किरदार के माध्यम से लेखक ने दलित समस्या का विश्लेषण और दलित मुक्ति संघर्ष की दिशा पर चर्चा की हैं। प्रो. बग्गा के अनुसार मनु ने भारतीय समाज को ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्रों में बांटा है। प्रो. बग्गा ने आधुनिक काल में जमींदारों-भूमिपतियों बड़े किसानों की व्याख्या करते हुए मध्यवर्गीय किसानों व गरीब किसानों की चर्चा की है। संत रविदास और डॉ. आंबेडकर की चर्चा दलित प्रसंग में क्रांतिकारी योद्धाओं के रूप में की गई हैं।

प्रो. बग्गा के अनुसार गरीब किसानों और हरिजन लोगों के दुखांत एक से हैं और वह दोनों के मिलने में ही दोनों का कल्याण देखते हैं। प्रो. बग्गा ने लोकमान्य की इस कथा कि चानो व जानो के भाई अर्थात् चमार और बनिए भाई थे को रद्द करता हुआ चानों और जानो के भाई होने अर्थात् चमार और जाट (गरीब किसान) की एकता को सही लोकसंगठन बताया।

चुनावों में कट्टू आरक्षण निति पर भी चर्चा करता हुआ आरक्षण को दान–पुन्न मानकर हक मानते हुए अंततः इसे छोड़ कर क्रांति के रास्ते पर चलने का आह्वान करता है।

क्रांति के लिए कट्टू मज़दूर और किसान एकता का जोरदार अध्ययन और लेखन या माओ जैसे नेतृत्व की आकांक्षा व्यक्त करता है। जमींदार उसे नक्सलवादी कह कर अंततः चुनाव से एक दिन पहले चुनाव सभा में ही मरवा देते हैं।

कुल मिलाकर डॉ. राओ ने 'मशालची' उपन्यास में दलित मुक्ति संघर्ष की दिशा तो स्पष्ट की है किंतु उसकी दशा रूप में कट्टू की हत्या के साथ पराजय के दुखांत को उन्होंने अधिक यथार्थ माना है। 1971 के आसपास कट्टू जैसी क्रांति-दृष्टि लेकर दलित वर्ग की शुरू में पराजय होनी स्वाभाविक ही है, क्योंकि समाज का शक्ति संतुलन बुरी तरह दलित विरोध था। लेकिन इस उपन्यास की रचना के दो दशक बाद अब स्थिति में बदलाव आया है- दलित वर्ग पर अत्याचार तो अभी भी होते हैं, लेकिन एक तो दलित वर्ग की ओर से जन-प्रतिरोध बढ़ा है, दूसरे कुछ कानून भी सख्त बने हैं और कुछ कानूनों का जन-दबाव में पालन भी होने लगा है, जो पहले नही होता था।

डॉ. गुरचरण सिंह राओ की दलित मुक्ति संघर्ष की दृष्टि मार्क्सवाद और आंबेडकर चिंतन के योग से बनी दृष्टि है, जो अब पहले से अधिक सशक्त हुई है। दलित संघर्ष की कमज़ोर लेकिन धीरे-धीरे मज़बूत होती दशा का आदर्शीकरण न करके उसकी पराजय के दुखांत को उन्होंने कट्टू की हत्या के रूप में रेखांकित किया है। दलित जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति में यह उपन्यास सफल है।

19.5 सारांश

'मशालची' उपन्यास से संबंधित इस इकाई में आपने पंजाब के दलित जीवन सन्दर्भों व दलित जीवन की वास्तविकता का परिचय प्राप्त किया। स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद की स्थिति को दलित दृष्टि से समझा। जिसके अनुसार दलितों के लिए दोनों स्थितियों में विशेष अंतर न था।

सबसे महत्वपूर्ण रूप में 'मशालची' के ज़रिए लेखक ने दलित मुक्ति संघर्ष की सैद्धांतिक व व्यवहारिक दिशा का सविस्तार विश्लेषण किया है। लेखक की जीवन-दृष्टि भौतिकवादी चिंतन से प्रभावित है और वह इस संबंध में व्यवहारिक चिंतन का परिचय देता हुआ मज़दूर (दलित) और गरीब किसान एकता को महत्त्व देता है। दलित मुक्ति संघर्ष की दशा के चित्रण में भी लेखक ने आदर्श से अधिक काम लिया है। उसने उपन्यास का अंत कट्टू की हत्या के दुखांत से किया, जो खुद दलितों के हाथों ही करवाई जानी है। लेकिन इस दुखांत चित्रण से लेखक ने दलित जीवन के यथार्थ को प्रभावित बनाया है, जिससे उपन्यास की गुणवत्ता भी बढ़ी है।

कुल मिलाकर 'मशालची' उपन्यास से पंजाबी ग्रामीण समाज के आर्थिक-सामाजिक संबंधों अर्थात् जमींदार व दलित वर्ग संबंधों की वास्तविकता और दलित संघर्ष का यथार्थ रूप सामने आता है जो उपन्यास की सफलता है।

इकाई 20 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 तेलुगु दलित उपन्यास की पृष्ठभूमि

20.3 लेखक का परिचय

20.4 जी. कल्याणराव की कृतियाँ

20.5 'अस्पृश्य वसंत' की कथावस्तु

20.6 उपन्यास की विशेषताएँ

20.7 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में जाति आधारित सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भ

20.8 दलितों की अन्य धर्मों के प्रति आसक्ति : दलित चेतना का आविर्भाव

20.9 'अस्पृश्य वसंत' एवं गाँधीजी का प्रभाव : राष्ट्रीय आन्दोलन एवं दलितों की भूमिका

20.10 'अस्पृश्य वसंत एवं नक्सलवादी आन्दोलन

20.11 सारांश

20.0 उद्देश्य

'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु नामक इस इकाई में आप तेलुगु के प्रसिद्ध दलित उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- तेलुगु दलित उपन्यास की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगे;
- तेलुगु के दलित उपन्यास की विकास यात्रा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- 'अस्पृश्य वसंत' के लेखक का परिचय बता सकेंगे;
- 'अस्पृश्य वसंत' की कथावस्तु स्पष्ट कर सकेंगे;
- 'अस्पृश्य वसंत' की विशेषताएँ स्पष्ट कर सकेंगे; और
- 'अस्पृश्य वसंत' में अभिव्यक्त दलित चेतना को स्पष्ट कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

भारतीय दलित साहित्य के पाठ्यक्रम के अंतर्गत यह इकाई तेलुगु के दलित साहित्य, विशेषतः उपन्यास पर केन्द्रित है। इस इकाई में तेलुगु की दलित साहित्य परंपरा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में तेलुगु दलित उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' का अध्ययन करेंगे। उपन्यासकार जी. कल्याणराव का यह उपन्यास दलित चेतना की उत्कृष्ठ कृति है। इस उपन्यास की कथावस्तु के संदर्भ में अध्ययन करते हैं।

20.2 तेलुगु दलित उपन्यास की पृष्ठभूमि

आधुनिक काल की साहित्यिक विधाओं में उपन्यास विधा अत्यंत समुन्नत स्थान प्राप्त कर चुकी है। इस प्रकार कई दशाब्दियों से तेलुगु समाज के विद्वत लोगों को आकर्षित करने वाली यह विधा लगभग 135 सालों के बीच (1872-2007) कई सौ लेखकों के उपन्यासों के सृजन में सहायक बनी। सभी साहित्यिक विधाओं की भाँति यह उपन्यास विधा भी समाज में होने वाली हर एक घटना से स्पंदित एवं प्रेरित होकर, समय के अनुसार लोगों को चेतनाशील बनाती चली आ रही है। इस प्रकार यह विधा प्रगति पथ पर चलते चलते सन् 1980 तक आते-आते सभी सैद्धांतिक एवं प्रगतिवादी विचारों से तनिक हटकर स्त्रियों एवं दलितों के जीवन-विधान के चित्रण में एक विशेषता हासिल कर पाई। इसी दिशा में अग्रसर होते हुए डॉ. जी कल्याणराव ने 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में सात पीढ़ियों के दलितों की जीवन पद्धतियों के चित्रण के साथ उनकी इतिहास परंपरा भी दर्शाने का सफल प्रयास किया है। इस उपन्यास पर विस्तापूर्वक अध्ययन करने से पहले तेलुगु के दलित उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर विचार करना समीचित होगा।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि 'दलित समस्याओं' के आधार पर प्रथम भारतीय उपन्यास श्री मुल्कराज आनंद रचित 'अनटचबुल' को लिया जा सकता है। इसके अलावा मुंशी प्रेमचंद, टैगोर जैसी विभूतियों की कलम से भी दलित समस्याओं से प्रेरित साहित्य रचा गया है। तेलुगु के श्री तल्लाप्रगड़ सूर्यनारायण द्वारा रचित 'हेलावती' उपन्यास में दलित जीवन संबंधी धारणाओं का चित्रण अत्यधिक रूप से हुआ है। लेकिन उसमें कहीं इसके विपरीत क्रांति या विद्रोह के चिह्न नज़र नही आते हैं। फिर भी प्रथम दलित उपन्यास दस्तक के रूप में इस उपन्यास को लिया जाता है। सामाजिक स्थिति गतियों के आधार पर देखा जाय तो यह जगत विदित सत्य है कि कई सदियों से दलित अत्यंत दयनीय स्थिति में है। इस दयनीयता को झेलने के शक्ति के अभाव में अधिकांश दलित इस्लाम या ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए हैं। इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरित होकर श्री तल्लाप्रगड़ सूर्यनारायण ने 'हेलावती' की रचना की है। इसी प्रकार वेंकट पार्वतीश्वर कवि ने दलितों के मन्दिर प्रवेश को लेकर सन् 1919 में 'मातृ-मंदिर' उपन्यास की रचना की है। इन दो उपन्यासों के पश्चात् संपूर्ण रूप से दलित की प्रगति की आकांक्षा को प्रधान इतिवृत्त के रूप में लेकर उन्नव लक्ष्मीनारायण ने 'मालपल्लि' की रचना की है। दलितों के जीवन में नये विकासात्मक चरणों का शुभारंभ इसी उपन्यास के द्वारा माना जा सकता है। इसके बाद उच्च वर्ग एवं दलित लोगों के बीच के अंतर को दर्शाते हुए, अछूत समस्या से उत्पन्न लोगों के बीच की दूरियों को दिखाने वाला उपन्यास सन् 1933 में आचार्य एन.जी.रंगा द्वारा रचित 'हरिजन नेता' है। सन् 1946 में अड़वि बापिराजु द्वारा रचित 'नरुडु' (नर) उपन्यास में भी दलितोद्धार संबंधी विचार व्यक्त हुए हैं। इसके बाद सन् 1948 में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण रचित 'बद्धना सेनानी' उपन्यास में एक दलित व्यक्ति के जीवन आदर्शों को व्यक्त किया गया है। सन् 1949 में इल्लिंदु रंगनायकुलु ने अपने उपन्यास 'मल्लिका' द्वारा यह साबित किया है कि अछूत समस्या वेद एवं धर्म विरूद्ध है और इस समस्या के खिलाफ आवाज उठाने का संदेश इसमें व्यक्त हुआ है। सन् 1949 में ही अंतटि नरसिंहम् द्वारा रचित 'आदर्शम' उपन्यास में दलितों की शिक्षा संबंधी मान्यताओं का चित्रण हुआ है। इसके 10 साल बाद सन् 1960 में दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यासों के इतिहास में मील का पत्थर माने जाने वाला उपन्यास 'बलिपीठमु' की रचना श्रीमति मुप्पाल रंगनायकम्मा ने की है। इसके बाद सुश्री लता की कलम से 'मिसेस कोकिला' उपन्यास निकला है। फिर श्री कप्पगंतुलु मल्लिकार्जुन राव द्वारा रचित 'थकधिम थकधिम तोलुबोम्मा' तथा डॉ.मुदिगोंड़ा शिव प्रसाद द्वारा रचित 'नव कल्याण', सुश्री रामलक्ष्मी रचित

'तपोभंगम' उपन्यासों ने विशेष ख्याति पाई है। इसके पश्चात् सन् 1970 में डॉ. केशवरेड्डी द्वारा रचित 'आखरि गुड़िसा' (अंतिम झोपड़ी) तथा इन्हीं के द्वारा रचित एक और उपन्यास 'मूगवानि पिल्लनग्रोवि' में दलितों के जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया गया है। सन् 1981 में श्री अक्किनेनि कुटुम्बराव ने 'सोराज्जम' (स्वतंत्रता) उपन्यास की रचना की है। सन् 1982 में डॉ.अंतटि नरसिंहम् रचित 'चीकट्लोकांति रेखलु', श्री वराह नरसिंहम प्रसाद रचित 'असुरगण्म' (सन् 1983) भी विशेष उल्लेखनीय उपन्यास है। इसी प्रकार सन् 1984 में डॉ. वि. आंजनेयुलु नायुडु द्वारा रचित 'राकासि कोना', श्री दंड़ाल चंटब्बाई रचित 'अंतुलेनि अमावस्या', श्री भूपति रचित 'कुलकन्या', श्री आर नंदि रचित 'नैमिशरण्यम' भी चर्चित उपन्यास हैं। सन् 1994 में श्री के.के.मीनन द्वारा रचित 'बाकी ब्रतुकुलु' सन् 1998 में श्री चिलकूरि देवपुत्र रचित 'पंचमम्' अत्यंत लोक प्रिय उपन्यासों के अंतर्गत लिए जा सकते हैं। इसी समय 'मादिग पल्ले', मी राज्यम मीरेलंड़ि', आदि कई उपन्यास दलित जीवन पर केन्द्रित हैं। इस प्रकार कई उपन्यासकारों ने दलित जीवन से संबंधित अनेक विषयों को लेकर उपन्यासों का सृजन किया है। अब सन् 2000 में दलित उपन्यास साहित्य के विकास में जी. कल्याणराव द्वारा रचित 'अंटरानि वसंतमु' (अस्पृश्य वसंत) अत्यन्त विचारोत्तेजक उपन्यास साबित हुआ है, जिसका विस्तृत परिचय नीचे दिया जा रहा है।

20.3 लेखक का परिचय

जी. कल्याणराव का जन्म सन् 1945 में हुआ। इनके माता-पिता है - बालनागम्मा और गंगोलु रामय्या। वे शांबशिवपुर अग्रहार में जन्मे हैं। प्रस्तुत उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' में वर्णित 'एन्नेलदिन्नि' गाँव शांबशिवपुर अग्रहार उनका जन्म स्थान है। माता का देहान्त लेखक की बाल्यावस्था में होने के कारण उनका लालन-पालन नाना,नानी के यहाँ हुआ। इन्होंने सागर विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में एम.ए किया। वे कई सालों से नक्सलवादी आंदोलन से जुड़े हुए है। इस कारण सरकारी नौकरी में दाखिल नहीं कर पाए। तेलुगु की प्रसिद्ध राजनैतिक पत्रिका 'अरूणतारा के संपादक थे। बचपन में जब वे शांबशिवपुर गॉव में रहते थे तब अपने परिवार के लोगों द्वारा ही लोक गीतों से उनका परिचय हुआ। जब आलकूस गाँव में बड़े हुए तो कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं से इनका परिचय हुआ। वे उनकी सभाओं में भी जाते थे। उस गाँव में तरिमेला नागिरेड्डी पुलिस से अपना बचाव करने के लिए इस गाँव में कुछ दिनों तक छिपे थे। इन नेताओं को ढूंढ़ती पुलिस ने कई मकानों को जला भी डाला था और कई बेकसूर लोगों को बंदी बनाया। लेखक का कहना है कि इस उपन्यास में वर्णित 'बंदूक की घटना' यहीं पर घटित घटना है। आंदोलनो के साथ साथ ईसाई धर्म का प्रचार भी उस समय इस गाँव में हुआ था। जी. काल्याणराव कुछ दिनों तक प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य भी रहे। बाद में सन् 1970 में 'विप्लव रचयितल संघम' (क्रांतिकारी लेखक संगठन) से जुड़ गये और आज भी उसी संगठन से जुड़ कर कई जन आन्दोलनों में हिस्सा ले रहे हैं। अतः जी कल्याणराव न केवल तेलुगु के शीर्षस्थ लेखक हैं बल्कि एक सक्रिय कार्यकर्ता भी है।

20.4 जी. कल्याणराव की कृतियाँ

जब वे दसवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तभी इन्होंने 'ठाम,ठाम दोरा' (साहब) नाटक की रचना कर उसका मंचन भी किया। कालेज में पढते समय इन्हें 'ड्यूटी' नामक कहानी के लिए पुरस्कार भी मिला। इसके बाद उन्होंने दर्जनों कहानियाँ लिखी। तेलुगु के नाटक के क्षेत्र में उनकी अपनी पहचान है। इन के द्वारा लिखा गया नाटक 'तोलिपोछु' तेलुगु नाटक को एक नया मोड़ मिला है। जिसके आधार पर तेलुगु में फिल्म भी बनी है। कुल 13 नाटक

इन्होंने लिखे हैं। इन सब के अलावा उनका यह 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास दलित जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है। दूसरे शब्दों में दलित जीवन का महाकाव्य है।

20.5 'अस्पृश्य वसंत' की कथावस्तु

'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के संबंध में स्वयं लेखक लिखते हैं- 'इस उपन्यास में मैंने खुद अपने आपको पहचानने की कोशिश की है। मेरे आस-पास के वातावरण को, मरे अपनों को, अपने पूर्वजों को देखने का प्रयास मात्र किया है। बस यही किया है। सच कहा जाय तो मेरे अपने लोग एक अद्‌भुत संस्कृति के वारिस हैं। वे सभी उच्च कलाकार हैं। माँ की तरफ के तथा पिताजी की तरफ के लोग नुक्कड़ नाटक खेला करते थे। स्वयं अपने गानों को रचा करते थे।' इस प्रकार अपने पूर्वजों के इतिहास को उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से पुनः रचा है।

उपन्यास में जी. कल्याणराव ने सात पीढ़ियों के दलित इतिहास को चित्रित करने का प्रयास किया है। इस कहानी की प्रमुख पात्रा रूतु, छठी पीढ़ी की है। जब वह 60 वर्ष की हो गई तो उसकी यादों के झरोखों से उपन्यास का इतिवृत्त शुरू होता है। आन्ध्र प्रदेश के नेल्लूरु जिले में कावलि के आस पास 'एन्नेलदिन्नि' गाँव में पहली पीढ़ी का सिना सुब्बन्ना अपनी पत्नी सिना सुब्बी के साथ रहता था। चूँकि वह जाति से दलित था तो उच्च जाति के लोगों के घरों में बेगारी किया करता था। यह बेगारी कई पीढ़ियों तक चलती रही। सिना सुब्बन्ना का बेटा एल्लन्ना उस गाँव के मुखिया के यहाँ मुफ्त का नौकर रहा। एल्लन्ना का बेटा है एर्रैंकड़ और उसकी पत्नी का नाम है लिंगालू। इनका बेटा एल्लन्ना ही इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। जब एल्लन्ना का जन्म हुआ तब उसकी बुआ भूदेवी बहुत खुश हुई। क्योंकि वह निस्संतान थी, इसे ही उन्होंने अपना बेटा मान लिया। उसकी परवरिश अधिकांश उन्हीं के हाथों हुई। भूदेवी का पति एंकटनर्सु पेशे से जुलाहा था। लेकिन अपने पेशे को छोड़ कर आस पास के गाँव घूमकर कपड़े बेचा करता था। भूदेवी अच्छी गायिका थी। गाने के सभी धुनों को एल्लन्ना ने अपनी बुआ से ही सीखा। जब ये छोटा था तभी इस गाँव में एरर्रगोल्ललु (ग्वाले) आकर बस गए। वे तरह तरह की रचनाएँ रचकर बीच सड़कों में गाते बजाते हुए खेला करते थे। एक बार रात के समय उनके गाने सुनकर एल्लन्ना उनके मुहल्ले पहुँच जाता है। वहाँ पर उच्च जाति के बच्चे खेलते रहते हैं। अचानक उच्च जाति के बच्चों ने इस अछूत बालक को देखा। देखते ही गुस्से में पत्थरों से उस बच्चे पर वार किया। इस हठात् परिणाम से भयभीत वह बच्चा उस गाँव से भाग निकलता है। भागते समय उसे कुछ याद नहीं रहता। केवल अपनी जान बचाने की फिक्र थी। भागते-भागते रात तक पास के दूसरे गाँव 'पक्कलदिन्नि' पहुँच जाता है। वहाँ उरुमुला नागन्ना के नेतृत्व में 'उरुमुला' नाच को देखता है। जाने-अनजाने ही उसके पैर नाच में थिरकने लगते हैं। धीरे-धीरे उनके संग नाचते-नाचते अपने को भूल जाता है। वह धीरे धीरे नागन्ना की प्रशंसा भी पाता है। इस तरह पक्कलदिन्नि पहुँचने के बाद नागन्ना ने ही उसकी परवरिश की। अपनी राम कहानी एल्लन्ना नागन्ना को सुनाता है। नागन्ना कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वह उरुमुला नागन्ना है। तटीय आन्ध्रा, रायलसीमा जिलों में वह अपने नाच-गानों के लिए बहुत ही मशूहर है। वहाँ उसके तथा उसके साथियों के बिना 'गंगा का उत्सव' मनाया ही नहीं जाता। नागन्ना को इस विधा की दीक्षा देने वाले व्यक्ति उरुमुली चंद्रप्पा हैं। ढ़फली बजाने में चंद्रप्पा ने, नागन्ना को बहुत कुछ सिखाया है। 'टांगा के गीत' की गहराइयों को छूने में किन बातों पर ध्यान देना है, उन सभी सूक्ष्म विषयों की जानकारी नागन्ना ने सीख ली। इस दलित व्यक्ति चंद्रप्पा का गाँव धर्मापुर था जो अनंतपुर जिले में स्थित है। बचपन के दिनों में ही इसका परिचय नागन्ना की माँ के साथ होता है। इस के पीछे भी एक घटना घटी थी। जब नागन्ना बहुत ही छोटा था तो एक बार वहाँ बाढ़ आयी

थी। जान बचाने सारे लोग उच्च जाति के प्रांतों की ओर बढ़े। इन सबके नेता उस समय नागन्ना के पिता 'नारिगाड़' थे। दलित वर्ग के चमार, भंगी, डोम आदि सभी लोगों ने मिलकर जो अपना साहस दिखाया, उससे उच्च जाति के लोगों का शिकार नारिगाडु बना। उसके जाने के बाद अपनी आजीविका के लिए नागन्ना की माँ बिलकुल सड़क पर आ गयी। इसी सिलसिले में उसका परिचय उरुमुला चंद्रप्पा के साथ हो जाता है। भले ही नागन्ना का जन्म एन्नलदिन्नि में हुआ हो, लेकिन पिता की मृत्यु के कारण उसका पालन पोषण 'धर्मापुरम' में ही हुआ। वही चंद्रप्पा की परवरिश में नागन्ना बड़ा होता है और चंद्रप्पा को वह सिन्नब्बा (चाचा) कहकर पुकारने लगता है। चंद्रप्पा के गुजरने के बाद, नागप्पा अपने नये शिष्यों के साथ चंद्रप्पा की विद्या को आगे बढ़ाया रहा। माँ के मरने से पहले ही नागन्ना का विवाह रामुलु से हो जाता है। लेकिन बेटी को जन्म देते ही रामुलु भी गुजर जाती है। तब से अकेलेपन को दूर करने के लिए नागप्पा, पूरी तरह से अपनी कला को बढ़ाने में ही डूब जाता है। वह यहाँ वहाँ घूमता हुआ आखिर पक्कलदिन्नी पहुँच जाता है। जब एल्लन्ना के मुंह से उसने एन्नलदिन्नी का नाम सुना तो, उसे अपने बीते जीवन की यादें ताजा हो जाती है। यहाँ भूदेवी भी, एल्लान्ना के जाने के बाद पागल सी हो जाती है। जब भी देखो एक ही रट लगाती रहती है कि जिस उच्च जाति वालों ने एल्लन्ना को यहाँ से भाग जाने के लिए बाध्य किया, उनका वह सर्वनाश कर देगी। इन बातों को सुनकर दलित जाति के मुखिया लोग डर जाते हैं। उन्हें लगने लगा न जाने आगे कौन सी मुसीबतें आने वाली हैं। इसी विषय पर दलितों की गाँव में पंचायत भी होती है। तभी नागन्ना, एल्लान्ना को लेकर उस गाँव में प्रवेश करता है। एल्लन्ना को देख सभी खुश हो जाते हैं। वही नागन्ना अपने समवयस्क 'पिट्टोडु' को पहचान लेता है। वह यह भी जान लेता है कि पिट्टोडु उसका करीबी रिश्तेदार है। कुछ और बुज़ुर्ग लोगों को भी नागन्ना पहचान लेता है। अपने लोगों की कमी जो इतने दिनों से उसे सताई जा रही थी, अब दूर हो जाती है।

समय आगे चलता गया अब एल्लन्ना ने अपने ही गाँव में एक कलाकार होने का नाम भी पा लिया। वह उसी गाँव की सुभद्रा से प्रेम कर, उसके नाम से भी कई गाने बना कर गाने लगा। अब दोनों की शादी भी हो जाती है। शादी के बाद भी एल्लन्ना, सुभद्रा के संग भूदेवी के यहाँ ही रहने लगता है। अब एल्लन्ना और सुभद्रा का बेटा शिवय्या, आज कल सब का दुलारा बनता है।

लोक साहित्य का संपूर्ण ज्ञान से ही एल्लन्ना न नागप्पा को प्राप्त कर लिया था। नागन्ना के साथ मिलकर आस-पास के सभी गाँवों में अपनी कला का प्रदर्शन करने लगा था। इन गानों के जरिए दलित समाज में चेतना जागृत हुई है। लेकिन इस जागृति से उच्च जाति के लोगों में असंतोष पनपने लगा और मौके की तलाश में रहे कि कब इनकी आवाज बंद ने इसका बदला चुपचाप लिया भी है। लेकिन इस बीच उच्च जाति लोगों के अत्याचारों को जानते हुए भी चुप थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं इस बीच उन्हें अपने लोगों को खोना न पड़े। इस मानसिक डर को दूर करने का प्रयास नागन्ना अपने मित्र पिट्टोडु द्वारा करने मे प्रयत्नशील रहा। लेकिन उस गाँव के मुखिया सोचते है कि अगर इनकी एकता को तोड़ सके तो इनकी चेतना को नष्ट कर पाने में ये सफल होंगे। फिर भी दलितों ने अपना रास्ता नहीं छोड़ा। जहाँ भी ये लोग अपनी कला का प्रदर्शन पहले करते आये तो उस समय गाँव के बड़े लोगों को बुलावा भेजते थे। लेकिन अब इन लोगों ने अपने ही बिरादरी के बुज़ुर्गों को उच्च आसन पर बिठाकर अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। इसे उच्च जाति के लोग सह नहीं पाये। एक बार 'दिब्बलमेट्टा' में इन लोगों ने अपनी कला को प्रदर्शित करने का फ़ैसला किया। लेकिन उस गाँव के मुखिया अच्चिरेड्डी ने अपने अधिकार को जताते हुए इस कार्य को हाने नहीं दिया। इस घटना से नागन्ना विचलित हुए। इस सद्मे को बरदाश्त न कर पाने के कारण उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है मरने से पहले ही इन्होंने कुछ नये गानों को एल्लन्ना को सिखा दिया था। उन गानों का

संदेश था कि दलित वर्ग अपने जीवन की स्थिति-गतियों को जान सके। उस जानकारी की दिशा में आगे बढ़ते हुए, गर्व के साथ जीने का प्रयास कर सके। एल्लन्ना ने सोचा नागन्ना के इस संदेश को सभी लोगों तक पहुँचाना उसका कर्तव्य है। इसी कारण उसने घर छोड़कर जाने का निर्णय लिया था। जिन बातों को उसने जाना, जिन अनुभवों को उसने पाया, इन सब बातों को व्यक्त करने निमित्त एक वीर रसात्मक गाथा की रचना की। उसमें, अपने गाँव के वर्णन के साथ अपनी जाति की दीनावस्था का चित्रण करते हुए उसी में उच्च जाति के अत्याचारों का वर्णन भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। एक दिन वह पूरी रात गाता रहा। दूसरे दिन पत्नी से यह कह कर चल पड़ा है कि उसे कुछ छोटा सा काम है, देखकर वापिस आ जाएगा। सुभद्रा जान नहीं पाती कि इस छोटे से काम के लिए उसे कितने साल इंतजार करना पड़ेगा। 'एन्नेलादिन्नि' से निकल कर एल्लन्ना कई गाँव घूमता रहता है। बहुत दिनों तक वह एक ही जगह ठहर नहीं पाता है। बीज बोने वाले किसानों का जीवन, मज़दूरों की समस्याएँ, खेत-खलिहान आदि विषय उस के गीत के इतिवृत्त रहे। उसके सभी गानों में कहीं-न-कहीं सुभद्रा का नाम तो रहता ही था। एक बार गुन्टरु प्रांत के आस पास कई दिनों तक ठहर जाता है। वहाँ के सभी दलित जन, में बैरागी एर्रल्लन्ना को 'डोम बैरागी' नाम से पुकारने भी लगे थे। इस यात्रा में इसका परिचय कुम्हार जाति का 'पेदकोटीश्वरुडु' तथा 'एनादि वंश' के रमणय्या के साथ होता है। एल्लन्ना के सभी गानों को 'पेदकोटीश्वरुडु' ने अक्षर रूप दिया था और इन गानों के लिए यानादि रमणय्या ढ़फली बजाता था। उच्च जाति के 'पेदकोटीश्वरुडु' का इस तरह एल्लन्ना के साथ घूमना उस जाति के लोग सह नहीं पाए। फलतः उसे मार डालते हैं और उन कागज़ों को जला डालते हैं, जिसमें एल्लन्ना के गीत है। इस घटना के बाद एल्लन्ना उस गाँव को छोड़ कर चला जाता है। कभी कभार 'पेदकोटय्या' की समाधि के दर्शन कर लौट जाता है।

यहाँ एल्लन्ना का बेटा शिवय्या बड़ा हो जाता है। विश्वास था कि कभी न कभी उसका पिता लौटेगा। बुआ सुभद्रा, पिट्टोडु भी एल्लन्ना की आस लिए हुए थे। एल्लन्ना के लौटने पर खुश हो जाते हैं। एल्लन्ना को याद करते-करते एल्लन्ना के माँ-बाप गुजर जाते हैं। नागन्ना और एल्लना के प्रयासों के कारण इन दलितों को 'दय्यालदिब्बा' ज़मीन मिली थी। उसी ज़मीन को उपजाऊ बनाने में ये लोग लगे हुए थे। अचानक वहाँ पानी की समस्या सताने लगती है। उच्च जाति के खेत-खलिहानों के लिए ही पानी ठीक से मिल नहीं रहा था। ऐसी स्थिति में दलितों की समस्याओं का अंदाज लगाया जा सकता है। चोरी-चुपके रात के समय ये लोग पानी लेते थे। जब यह बात उच्च जाति के लोगों को मालूम हो जाती है तो, दलितों पर जबर्दस्त वार करते हैं। ठीक उसी सयम सुभद्रा इनसे टक्कर लेकर नाले के बांध को तोड़ डालती है। इस विद्रोह को देख उच्च जाति के नेता अच्चिदेड्ड़ी भी चकित हो जाते हैं। उनमें एक लड़की थी जो गाने की शौकीन थी उसके सभी गानों में सुभद्रा का नाम था। तब सुभद्रा जान लेती है कि एल्लन्ना ने ही इस गाने को रचा होगा और गाया भी होगा। इस लड़की का नाम शशिरेखा है। शशिरेखा गाना तो गा लेती है, पर कृति-कर्ता को जान नहीं पाती है। समय के साथ यही शशिरेखा, शिवय्या की पत्नी बन जाती है। उसी समय भंयकर अकाल पड़ता है, एन्नलदिन्नि प्रांत भी उसका शिकार हो जाता है। सारा प्रदेश सूखे की चपेट में आ जाता है। गरीब किसान डर जाते हैं। दलितों की जिन्दगी और भी बदतर हो जाती है। बचे हुए लोग गुजारे के खोज में दूसरे प्रांत की की ओर निकल पड़ते हैं। यहाँ शिवय्या की स्थिति भी दयनीय बन चकी थी। इस अकाल से एल्लन्ना भयभीत हो कर अपने गाँव लौटना चाहता है। वह थका मँदा सुभद्रा के नाम का रट लगाते हुए गाँव के समीप आ कर बैठ जाता है। पिता को पहचान कर शिवय्या अपने कंधों पर पिता को ढ़ोते हुए अपने घर ले आता है। घर पहुँचते ही, सुभद्रा को देख उसी का नाम रटते-रटते मर जाता है। उसी की गोद में सुभद्रा भी चल बसती है।

शिवय्या उन दोनों को अलग किए बिना ही दोनों का एक साथ क्रिया-कर्म करता है। इस के बाद शिवय्या अपनी पत्नी के संग 'बकिंग हम' नाले के पास काम की खोज में चल पड़ता है। वहाँ मज़दूरी के लिए सभी से बिनती करता है। लेकिन उच्च जाति वाले उसका नाम और जात सुनते ही उसे पीटने लगते हैं। ठीक इसी समय उसका परिचय मार्टिन से होता है। मार्टिन की सिफारिश से उसे काम मिल जाता है। शिवय्या के मन में उसके प्रति अत्यंत आदर की भावना रहती है। मार्टिन में प्रगतिशील विचार पहले से ही मौजूद थे। घर के लोगों से इसकी पटती नहीं थी। तब अंगेजी बाबू की सहायता से वह ईसाई धर्म ग्रहण करता है। तब से उनकी मदद से शिक्षा प्राप्त कर ईसाई धर्म के प्रचार में लगा रहता है। दलितों में चेतना जागृत करने की इच्छा से ही आर्थिक रूप से उनकी सहायता करने लगता है। शिवय्या उसका साथी संगी बन जाता है। शिवय्या भी ईसाई धर्म से प्रभावित हो कर सीमोन बन जाता है। ऐसे समय क्रिसमस के पहले दिन उच वर्ग के लोग मार्टिन को मार डालते हैं। उन्हें मार्टिन पर गुस्सा इसलिए था कि वह उनकी ज़मीन को सरकार की सहायता से दीन दलितों में बाँट रहे थे। मार्टिन की मृत्यु के बाद इनके निवास स्थान 'वलसपाडु' पर भी इन लोगों ने हमला कर दिया था। जिसमें शिवय्या के साथ वहाँ के सभी लोग मारे जाते हैं। शशिरेखा ने तभी बच्चे को जन्म दिया था। शशिरेखा तो मर जाती है, लेकिन उसका बच्चा अनाथलय पहुँचा दिया जाता है। उस अनाथलय के संचालक में अध्यापक नियुक्त होता है। उस दलित वंश का प्रथम शिक्षित व्यक्ति रूबेन ही है। अपने पूर्वजों के इतिहास को जानने के लिए वह हनुमकोन्ड़ा पहुँचता है। वहाँ उसे बहुत कुछ उनका इतिहास मिल जाता है। साथ ही साथ उसे उसकी अर्धांगिनी रूतू भी मिलती है। रूतू एक लेखिका भी है। दैव संबंधी इतिवृत्त प्रधान रचनाएँ किया करती हैं। रूबेन एक अच्छा भक्त भी है और सामाजिक चेतना से जागृत व्यक्ति भी। एन्नेलदिन्नि गाँव में अध्यापक के तौर पर नियुक्त रामानुजम से रूबेन का परिचय होता है। दोनों के बीच कई बातों को लेकर चर्चाएँ होती थी। जिन्हें रूतू भी सुन आत्मसात कर लेती है। विवाह के बाद रूतू नर्स की पढ़ाई करती है और रूबेन के अस्पताल में ही नर्स बन जाती है। रूबेन के ज़रिए, उसकी वंश-गाथा को जान कर वही एक घर बनवाती है। उस समय एन्नेलदिन्नि में कुछ गाँधीवादी दलितोद्धार निमित्त कुछ कार्यक्रम करने लगते हैं। लेकिन उनके दिलों में दलितों के प्रति और उनके उद्धार के लिए कोई प्रेम भावना नहीं दिखती थी। रामानुजम को यह सब बातें अच्छी नहीं लगती थी।

यहाँ इम्मानुएलु शिक्षित एवं संस्कारवान व्यक्ति बनता है। वह धीरे-धीरे कम्यूनिस्ट पार्टी के नियमों के प्रति भी आकर्षित हो जाता है। इनकी पत्नी का नाम मेरी सुवार्ता है। कालांतर में इम्मानुएलु नक्सलवादी कार्यक्रमों में भाग लेने लगता है। घर वाले इस बात को जानते हुए भी इसका विरोध नहीं करते हैं। इम्मानुएलु अपने बेटे का नाम जेस्सी रखता है। धोभी इन लोगों की सहायता करते थे। तभी रामानुजम भी दलितों के उद्धार के लिए कई आन्दोलन चलाते हैं। वह भी श्रीकाकुलम के नक्सलवादी आन्दोलन में भाग लेने लगता है।

यहां जेस्सी भी बड़ा हो कर प्रगतिवादी रचनाएँ लिखने लगता है। इन सबको पढ़कर रूतू प्रसन्न हो जाती है। जेस्सी अपनी बुआ की लड़की रूबी से प्यार करने लगता है। वे दोनों एक दूसरे के विचारों को मान्यता देते हैं। जेस्सी आन्दोलनकारी कार्यों में निमग्न हो जाता है और रूबी नारी उत्थान कार्यक्रमों में जुट जाती है। यह देख रूतू और रूबेन को उनकी बेटी और दामाद दोनों खरी-खोटी सुनाते हैं। रूबेन बुढ़ापे की उम्र में आ जाता है। मरने से पहले पोते जेस्सी को देखने की इच्छा रखता है। लेकिन देख नहीं पाता है। रूबेन की मृत्यु के बाद रूतू भी जेस्सी को अंतिम पत्र लिख कर विश्राम ले लेती है। संपूर्ण उपन्यास की कथा रूतू की यादों के सहारे ही चलती है। लेखक की यह शिल्पगत नवीनता प्रशंसनीय है।

20.6 उपन्यास की विशेषताएँ

उपन्यासकार जी. कल्याणराव ने तत्कालीन समाज में जिस प्रकार दलितों की जिन्दगी को देखा, परखा तथा अनुभव किया है, उसी का जीता जागता चित्रण इस उपन्यास में व्यक्त किया है। दलितों की जीवन-गतिविधियों का अपने पूर्वजों के उस शोषित वेदना का अपने परिवार, मित्र एवं अपने साथी संगियों के उन सारे अनुभवों को, जहाँ से दलितों की जिन्दगी का कोई भी कोना प्रस्तुत हो सके इन सबका चित्रण यथार्थ की स्थिति गतियों के साथ जोड़ते हुए लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। यह संपूर्ण रूप से आन्ध्र के दलित समाज का दर्पण है। लेखक ने अपने उपन्यास के शीर्षक में भी नवीनता की सृष्टि की है। लेखक ने यहाँ 'वसंतम्' शब्द को अपने जाति का प्रतीक माना है। तभी उपन्यास का शीर्षक 'अंटरानि वसंतमु' यानि 'अस्पृश्य वसंत' रखा है। इस तथ्य के बारे में स्वयं लेखक कहते है-

'यह वसंत तब भी निषिद्ध था
अब भी निषिद्ध है।
जन्म जात जाति निषिद्ध है,
मन चाह आन्दोलन निषिद्ध है।
यह कल की बात हो सकती है।
आज की हो सकती है
समय चाहे कुछ भी हो।'

अपने मन की गहराइयों की परतों की सच्चाई को व्यक्त करने में उपन्यासकार को तो आशातीत सफलता मिली है। किसी भी रचना के लिए इतिवृत्त या प्रतिपाद्य विषय अत्यन्त प्रमुख माना जाता है। उपन्यास के लेखक ने अपने प्रतिपाद्य विषय के बारे में बहुत कुछ सोचा है, शोध किया है। अपने शोध विषयक तथ्यों को उन्होंने किस प्रकार उपन्यास का अंश बनाया है, उनके द्वारा व्यक्त विचारों से यों अवगत होता है- 'मैं इस उपन्यास को तीन भागों में बाँटना चाहता था।.....यह जो उपन्यास है, मेरे 'नोट्स' का दूसरा भाग है।.....मेरे पूर्वजों के इतिहास के पन्ने बहुत है, उन्हें बाहर लाना ज़रूरी है।' इस लोक-संस्कृति, लोक-कलाएँ, आदिम जाति का, आहार निमित्त अन्वेषण की प्रक्रियाएँ, भू-संपत्ति के आन्दोलन, आत्म-गौरव के अंश, प्रकृति के साथ का स्नेह, काम के दौरान, काम से विमुक्ति पाते हुए थकान संबंधी इन सभी तथ्यों से जो भी स्वाभाविक शब्द निकलते हैं, उन शब्दों की लयात्मकता, गत्यात्मकता के साथ सभी का आँखों देखा उपन्यास में है। प्रसिद्ध आलोचक 'अरूणतारा' ने इस उपन्यास के बारे में लिखा है- 'श्रीकाकुलम के नक्सलबाड़ी आन्दोलन की प्रेरणा से आविर्भूत क्रांतिकारी लेखकों के उपन्यासों के अतंर्गत इस उपन्यास की नींव दृढ़ है। उसमें इतनी शैल्पिक सुन्दरता व्यक्त होती जो अत्यन्त दुर्लभ है। कोई भी विषय जैसे गीत, भूमि, सड़क, नाटक, श्रम, संगीत आदि इन सब का संबंध अपने आप में इतना मजबूत है, इन तथ्यों की अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। लगता है क्रांतिकारी साहित्य में ही नहीं बल्कि संपूर्ण तेलुगु साहित्य में भी ऐसी रचना अब तक रची ही नहीं गई है।'

20.7 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में जाति आधारित सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भ

उपन्यास के केन्द्र में 'ऐन्नेलदिन्नि' गाँव है। सभी गाँवों के समान इस गाँव की भी समस्या अछूत समस्या है। मूलतः उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से निम्न विश्लेषण प्रस्तुत किया है-

1. दलितों को उच्च जाति के घरों की ओर जाना सख्त मना है अगर किसी कारण चले भी गए तो उनका सही सलामत लौटना तो नामुमकिन ही है।

2. दलितों के लिए अजीविका चलाने के रास्ते कुछ भी नहीं है। उन्हें जीना है तो उच्च वर्ग के इशारों पर ही नाचना है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। फिर भी दलित वर्ग के लोग एक ओर घोर दरिद्रता झेलते हुए भी अपने पूर्वजों से प्राप्त कलाओं को छोड़ नहीं पाते हैं। यह तथ्य भी उतना ही सत्य है।

3. बदलते जीवन संदर्भों में ये दलित वर्ग अपने आप को जीवित रखने के लिए दूसरे धर्म को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाते हैं।

4. समय के साथ-साथ उनमें एकता के भाव मजबूत होते हुए व्यक्त होते है।

इस गाँव में जन संख्या, कुल एवं जाति की दृष्टि से चाहे जितने भी लोग क्यों न हो, लेकिन उनके बीच एक रेखा सी खींची रहती है, जो वहाँ के लोगों को अलग कर देती है। इस रेखा के ऊपर उच्च वर्ग के सभी जाति के लोग रहते है, रेखा के नीचे दलितों का स्थान है। चाहे कोई भी गाँव हो दलित लोगों का सभ्य समाज से कहीं दूर ही रहना है, यह एक सच्चाई है। इस सच्चाई को लेखक एक स्थान पर उद्घाटित करते हैं कि एक बार इस गाँव में बाढ़ आ गयी थी। पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है, इस कारण बाढ़ का पानी अगर नीचे की ओर आ जाए तो दलितों की बस्ती का डूबना भी एक कड़वा सत्य हैं उस समय इन लोगों ने अपनी विवशता यों व्यक्त की है - 'हमारी नस्ती का मिटना निश्चय है, ऊपर जाएंगे तो उच्च जाति के लोग मार डालेंगे, नीचे रहेंगे तो बाढ़ का पानी अपने अंदर समेट लेगा', (पृ.37) इन लोगों की आर्थिक विसंगति की बात उठाते हुए लेखक कहते हैं, 'इस एन्नेलदिन्नि में अधिकांश ज़मीन तो सरकारी मुखिया के पास ही रहती है। थोड़ी बहुत ज़मीन रेड्डी जात के होने के बावजूद भी वे सभी इस मुखिया की ज़मीन में ही मिला दिया गया है। इस बात से भी दलित लोग अनभिज्ञ थे। बस इस ज़मीन के हक़दार केवल मुखिया ही है।' (पृ.77)

जब दलितों की बात आती है तो यह कहना ही पड़ता है कि एन्नेलदिन्नि गाँव में बिना बेगारी किए उनका जीना तो दुर्भर ही है। उच्च कुल के खेत खलिहान की चौकीदारी में ही उनकी अधिकांश जिन्दगी कट जाती है। इसके फलस्वरूप उन्हें जिन्दा लाश की तरह रखने निमित्त थोड़ा सा अनाज दिया जाता है। इसके अलावा उच्च जाति के लोग दलितों की एकता को तोड़ने के प्रयत्न तो करते ही रहते हैं। यहाँ दलित लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए ताड़ के पेड़ काट कर पैसे कमाते रहते हैं। इसी ताड़ के पेड़ों से उनकी जिन्दगी बंधी हुई सी दिखती है। इस उपन्यास में आद्यंत उपन्यासकार ने यही दिखाने का प्रयास किया है। कभी कभी ये दलित लोग कुत्ते और गीदड़ के साथ भिड़ते हुए भी दिखते है।

जब एन्नेलदिन्नि गाँव अकाल का शिकार हो जाता है तो वहाँ की सारी जनता कुछ काम पाने की खोज में दूसरे स्थान चले जाती हैं। उपन्यास का पात्र शिवय्या भी अपनी पत्नी को साथ लेकर मजदूरी करने के लिए चल पड़ता है। शिवय्या इस उपन्यास के पाँचवे पीढ़ी का युवक है। मज़दूरी पाने के लिए वहाँ के मुखिया से याचना करता है तो उसका नाम, परिचय, जाति आदि विषयों का पता लगाते हैं। गाँव और जात का पता पाते ही मुखिया चिल्लाने लगता है। 'इस दलित जाति का व्यक्ति यहाँ काम माँगने आया है।' वह ऐसे चिल्लाने लगा जैसे कोई यहाँ आकर अमानुष कार्य की मांग कर रहा है। कुछ लोग तो उसे मारने के लिए दौड़े चले आते हैं। इस घटना को शिवय्या कुछ समझ नहीं पाता है। उसे इतना पता चल जाता है कि यहाँ कुछ देर और रूका तो उसकी जान जा सकती है। इस घटना से उनके शोषित सामाजिक संदर्भ का पता लग जाता है।

20.8 दलितों की अन्य धर्मों के प्रति आसक्ति : दलित चेतना का आविर्भाव

केवल जीवित रहने की एक मात्र आस के कारण इन लोगों ने उस समय ईसाई धर्म को स्वीकारा है। ईसाई धर्म के लोग इन्हें जीने के साथ साथ जीने के तौर तरीके भी सिखाने लगे। शिक्षा की ओर मुख्य रूप से इनका ध्यान बँटाने का प्रयास इन्होंने किया था। उच्च जात के घमंडीपन के खिलाफ बगावत करने के लिए दलित जाति का चिन्नोड़ जो मार्टिन नाम से इस उपन्यास में जाना जाता है, सदा तैयार रहता है। वह जानता है कि भारत देश में ऐसे विचारों का स्वागत नहीं हो सकता है। फिर भी उसने अपना प्रयास नहीं छोड़ा है। अपने आत्मविश्वास को कहीं ठेस न पहुँचे, इसी उद्देश्य से उसने ईसाई धर्म को ग्रहण किया। वहीं रह कर उसी के लिए समर्पित भी होता है। वह एक ओर ईसाई धर्म का प्रचार करते हुए भी दूसरी ओर अपने जाति के लोगों की समस्याओं को दूसर करने का प्रयास करता था। इसी प्रयास के फलस्वरूप 'वलसपाडु' गाँव की थोड़ी सी ज़मीन पर खेती करने के लिए अधिकार पा लेता है। इस ज़मीन को अपने जाति के लोगों तक पहुँचा पाता है। लेकिन इन दलितों के इस साहसी कृत्य को उच्च जाति वाले सह नहीं पाते हैं। वलसपाडु के पास रहने वाले दलितों पर हमला कर, कई लोगों को मार डालते हैं। इसमें मार्टिन भी घायल हो कर मर जाती है। इसी बीच शिवय्या जो अब सिमोन बन चुका था, वह भी घायल हो जाता है। उसे इतना पीटा जाता है कि वह खड़ा नहीं हो पाता है। लेकिन उसे खड़े हो कर मार्टिन के मृत देह को उठाकर दलित बस्ती की ओर चलने के लिए विवश किया जाता है। (पृ.-144) इस प्रकार इस उपन्यास में न जाने कितने अमानवीय दृश्य है, जिसके शिकार दलित होते हैं। इनके अलावा प्राकृतिक प्रकोप के शिकार को भी इसी शोषित वर्ग ने सहा है।

ऐसे भयानक परिस्थिति से गुजरते हुए इन लोगों के लिए ईसाई धर्म को स्वीकार करना आवश्यक हो गया था। सीमोन का बेटा रूबेन बचपन से ही ईसाई बन जाता है। ईसाई धर्म में पली बड़ी हुई शिक्षित नारी रूतू से विवाह भी करता है। रूतू भी अपने धर्म के प्रचारार्थ कुछ उपदेशात्मक नीति कथाएँ लिख कर प्रकाशित किया करती थी।

ईसाई धर्म को केवल अछूत वर्ग ने ही स्वीकारा नहीं वरन् कई उच्च जाति के लोग भी इस में शामिल हुए थे। इसी गाँव के मुखिये का दामाद जो एक वकील है, अपनी वकालत को चलाने के लिए उन्हें अंगेजों की सहायता की आवश्यकता थी। इसी कारण इन्होंने ईसाई धर्म को स्वीकारा। इस उपन्यास की एक और विड़म्बना यह दिखाई देती है कि कुछ उच्च जाति के जैसे जॉनपाल रेड्डी, येहोषुआ चौधरी आदि लोगों ने और अधिक संपत्ति पाने के लिए ईसाई धर्म को स्वीकारा है। इसी कारण कई उच्च कुल के लोग ईसाई धर्म को स्वीकारते हुए भी अपने नामों के आगे रेड्डी, चौधरी नामों को जोड़े रखते हैं। इसी कारण जिन दलितों ने ईसाई धर्म को अपनाया, उन्हीं पर अधिक वार भी हुआ करते थे, जिनका जिक्र इस उपन्यास में दिखाया गया है - 'समय अत्यन्त तेजी के साथ निकल रहा है। समय के साथ बदलाव भी। दलितों में चमारों पर काफी प्रहार भी होने लगे लेकिन यह बात कहीं दर्ज नहीं की गयी कि कृष्णा जिले के ईसाई चौधरियों पर कही वार हुआ है या नेल्लूरू जिले के रेड्डी ईसाईयों पर वार होने के सबूत पाए गए है। इसके अलावा सरकारी दफ़्तरों के ब्राह्मण ईसाईयों पर वार होने के उदाहरण नहीं मिलते हैं। (पृ.-140) इस प्रकार इस उपन्यास में चित्रित घटनाएँ कोरी कल्पनाएं नहीं हैं, बल्कि यथार्थ घटनाएँ है।

20.9 'अस्पृश्य वसंत' एवं गाँधीजी का प्रभाव : राष्ट्रीय आन्दोलन एवं दलितों की भूमिका

गाँधीजी ने अपने हरिजनोत्थान आन्दोलन को स्वतंत्रता का एक हिस्सा बनाया था। राजा राम मोहनराय या ब्रह्म समाज के सदस्यों की तरह केवल दलितों के उद्धार के लिए गाँधीजी ने कार्य नहीं किया है। तेलुगु उपन्यासों में 'सामाजिक चेतना' नामक ग्रन्थ में डा. संजीवम्मा का कथन है कि 'गाँधीजी जान गए थे कि जन संख्या में अधिक भाग स्त्रियों का है और दलित वर्गों का है। इस कारण इस सब को शामिल किए बिना यह राष्ट्रीय आन्दोलन आगे नहीं बढ़ पाएगा।' इस अंश का प्रतिपादन उपन्यास में सर्वत्र दिखाई देता है। इस उपन्यास में गाँधीजी के सेवा कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने वालों मे उन लोगों के वारिस शामिल है जिन्होंने दलितों की स्थिति को इस तरह बदत्तर बनाया है। इन में लिंगा रेड्डी, शिवा रेड्डी, अच्चि रेड्डी आदि लोग आते हैं। उनके द्वारा स्वीकृत कार्यों में पहला कार्य है, डोम और चमार जातियों के घर एवं गलियों के साफ करना तथा दूसरा कार्य है, उनके घरों का पानी पीना। इन कार्यों को वे लोग ऐसे निभाते हैं, जिससे लोगों के दिखावेपन पर उपन्यासकार ने व्यंग्य किया है। इस उपन्यास में एक घटना घटित होती है कि एकदिन दलितों को आश्वासन दिया जाता है कि वे लोग इनका मंदिर प्रवेश कराने वाले हैं। गाँव के बाहर स्थित शिवालय को सफ कर एक जुलुस की तरह ये उच्च जाति के लोग दलितों को लेकर चलते हैं। लेकिन दलितों ने जब देखा कि इनको ये लोग गाँव के बाहर वाले मंदिर ले जा रहे हैं तो उन्होंने आपत्ति उठाई। उनकी माँग रही कि गाँव के बीच जो विष्णु मंदिर है, उसमें प्रवेश किया जाए। दूसरा रास्ता न होने के कारण उन्हें उस मंदिर तक ले जाते हैं। लेकिन बाहर ही खड़ा कर समाज-सुधारक भाषण सुनाने लग जाते हैं। यहाँ तक स्वयं पुजारी उनके लिए प्रसाद भी वहीं ला देता है। प्रसाद पाने के घुन में ये लोग जल्दी से मंदिर में घुस जाते हैं। इस प्रकार इन का मंदिर प्रवेश अचानक हो जाता है। दलितों के बाहर जाने के बाद इन्हीं लोगों ने गोबर के पानी से मंदिर की शुद्धि करवाते हैं। इस घटना से ही पता लग जाता है कि इन लोगों में दलितों के विकास के प्रति कितनी सहानुभूति और कितना प्रेम है। इस संदर्भ में डॉ. संजवम्मा का कथन समीचीन प्रतीत होता है कि 'राष्ट्रीय आंदोलन राजनीतिक दृष्टि से तो सफलता प्राप्त कर चुका है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद सामाजिक आंदोलन के कार्य लड़खड़ा गये हैं। जिन बातों पर विश्वास कर आंदोलन उठाये गये थे, उनमें से एक भी कार्यक्रम ठीक से चल नही सका। शिक्षितों की संख्या अधिक बढ़ नहीं सकी। आर्थिक व्यवस्था में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो आर्थिक रूप से वर्ग-संघर्ष, जाति-संघर्ष और भी बढ़ते गये। कोई भी सुधारवादी आंदोलन, धन के बिना तो आगे नहीं बढ़ा है। इसी कारण दलितों का उद्धार, अछूत समस्या का उन्मूलन, अंधविश्वास एवं रूढ़िगत मान्यताओं का उन्मूलन आदि कार्यक्रम पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाए। इतना ही नहीं, कुछ विषय तो विकृत रूप धारण कर आज के सभ्य समाज में तांड़व नृत्य कर रहे हैं।' इस कथन से पता चल जाता है कि समाज में सुधारवादी आन्दोलन की क्या स्थिति है।

20.10 अस्पृश्य वसंत एवं नक्सलवादी आन्दोलन

उपन्यास का एक और मुख्य विषय है श्रीकाकुलम का नक्सलवादी आन्दोलन। इस आन्दोलन के बारे में लेखक का कथन है 'श्रीकाकुलम जिले में कम्यूनिस्ट पार्टी के आरंभ के पीछे एक तरह से तेलंगाना के किसानों द्वारा चलाया गया सशस्त्र आंदोलन का प्रभाव है। वहाँ प्रसिद्ध तेलंगाना के आंदोलन के दौरान कुछ आन्दोलनकारी नक्सलवादी गाँव में आकर छुपे रहे। तभी इन आंदोलनकारों की दृष्टि आन्ध्रा के जिला का मदानपुरम,

पातपट्टणम, जिला का बासवा आदि गाँव। उस समय कम्यूनिस्ट पार्टी के अंतर्गत किसान मजदूरों का संघ तथा विद्यार्थी संघ शामिल थे। सशस्त्र आंदोलन के साथ न्याय की माँग इनका लक्ष्य था। चूँकि इस उपन्यास के लेखक को भी श्रीकाकुलम के नक्सलवादी आंदोलन का पूर्ण ज्ञान है। वहाँ के क्रांतिकारी लेखकों से इन का परिचय भी है। इसी कारण इस आंदोलन का प्रस्ताव भी इस उपन्यास में हुआ।

20.11 सारांश

जी. कल्याणराव ने 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के प्रारंभ में जिस नवीनता को दिखाने का प्रयास किया उसी प्रकार अंत भी उतनी ही नवीनता और सोद्धेश्यपूर्ण है। प्रारंभ में रूतू जिस प्रकार अपने वंश के इतिहास के झरोंखों की यादों को स्मरण करती रही, उसी प्रकार पोते की याद में भविष्य में झांकती हुई रूतू एक चिट्ठी द्वारा इस उपन्यास को समाप्त करती है। उस पत्र के अंत में 60 वर्ष की रूतू लिखती है। इस सहस्त्राब्दि के किनारे बैठ, विगत शताब्दि के आरंभिक दिनों को याद कर रही हूँ, जिन्हें मैं ने केवल सुना है। फिर इस शताब्दि के मध्यकाल में जिन परिस्थितियों को मैंने देखा है, उन सब को सामने रखने का प्रयास कर रही हूँ। कई वीरों के त्याग को, अत्याचारों को इस शति के अंतिम दिनों में मैंने देखा है। इसी संदर्भ में ही दलित मानव अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जिन आंदोलनों में भाग ले चुके हैं, वे सभी सामने स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।' इस प्रकार रूतू की यादों से प्रारंभ हो कर रूतू की यादों में ही समापन की दिशा में अग्रसर होते हुए दलितों की सात पीढ़ियों के लंबे इतिहास को चित्रित करने का प्रयास की इस उपन्यास की एक विशिष्टता है। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा संपन्न दलित जाति की संस्कृति एवं सांस्कृतिक कलाओं के प्रस्तुतीकरण में यह उपन्यास एक श्रेष्ठ कृति के रूप मे तेलुगु उपन्यास साहित्य में सदा ही निक्षिप्त रहेगा।

इकाई 21 'अस्पृश्य वसंत' में चरित्र चित्रण

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के पुरुष पात्र

- 21.2.1 चंद्रप्पा
- 21.2.2 नागन्ना
- 21.2.3 एल्लन्ना
- 21.2.4 रूबेन
- 21.2.5 रामनुजम
- 21.2.6 जेस्सी

21.3 अस्पृश्य वसंत उपन्यास के स्त्री पात्र

- 21.3.1 रूतु
- 21.3.2 रूबी
- 21.3.3 भूदेवी
- 21.3.4 सुभद्रा

21.4 सारांश

खंड के प्रश्न

कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.0 उद्देश्य

'अस्पृश्य वसंत' के प्रमुख पात्र नामक इस इकाई में आप तेलुगु के प्रसिद्ध दलित उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' के पात्रों का परिचय प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- तेलुगु दलित उपन्यास के पात्रों का परिचय बता सकेंगे;
- दलित पात्रों के माध्यम से दलित जीवन की वास्तविकता का उद्‌घाटन कर सकेंगे;
- दलित जीवन की जटिलता, अपमानित, अवमानित होने की भीषण वास्तविकता से परिचित हो सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

कोई भी उपन्यास जो एक स्पष्ट लक्ष्य को लेकर लिखा जाता हो तो ऐसे उपन्यास के प्रतिपाद्य के प्रति उपन्यासकार जितना ध्यान देते हैं, उतना ही ध्यान पात्रों के निर्माण व उनकी चारित्रिक विशेषताओं के विकास के प्रति भी देते हैं। उपन्यास का प्रतिपाद्य वस्तुतः समाज से ही ग्रहण किया जाता है और तदनुरूप पात्र भी समाज से ही उभरते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की सार्थक अभिव्यक्ति के पीछे उसके तदनुरूप पात्र भी समाज से ही उभरते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की सार्थक अभिव्यक्ति के पीछे उसके पात्र ही होते हैं। अतः पात्रों के अभाव में उपन्यास की कल्पना नहीं की जा सकती है।

प्रस्तुत उपन्यास 'अस्पृश्य वसंत' में श्री जी. कल्याणराव ने जिस समाज को देखा है, उस समाज के इतिहास को खोज निकालने का प्रयास किया है। उसी की अभिव्यक्ति के लिए

उन्होंने उसी यथार्थ जगत से पात्रों का चयन किया है। इसी कारण उपन्यास के सभीपात्र यथार्थ जगत से जुड़े हुए हैं। अपने समाज को प्रतिबिंबित करने में भी उपन्यास के पात्र सफल हैं। उपन्यास का इतिवृत्त बहुत ही विस्तृत है। लगभग छः पीढ़ियों का दलित इतिहास इस उपन्यास में व्याप्त है। इस विस्तृत प्रतिपाद्य के निरूपण में सभी पात्रों का योगदान रहा है। यहाँ कोई भी पात्र उद्देश्य रहित रचा नहीं गया है। हर पात्र अपने आप में इतिहास के किसी न किसी तथ्य को हमारे सामने रखने में सफल हो पाया है। इन के माध्यम से दलित समाज की समस्याएँ एवं आकांक्षाएँ पाठकों के सामने सजीव बन कर प्रस्तुत होती हैं।

21.2 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के पुरुष पात्र

उपन्यास के माध्यम से दलितों का इतिहास, संघर्ष, संस्कृति, एवं भाषा को अभिव्यक्त करने के क्रम में उपन्यासकार ने दर्जनों पात्रों का निर्माण किया है। उन सभी पात्रों का परिचय देना इस इकाई में संभव नहीं है, वैसे आवश्यक भी नहीं है। यहाँ केवल स्त्री एवं पुरूष पात्रों का ही परिचय दिया जा रहा है। पहले पुरूष पात्रों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

21.2.1 चंद्रप्पा

चंद्रप्पा रायलसीमा के अंनतपुरम जिले में स्थित 'धार्मापुरम' गाँव का निवासी है। दलित वंशज है। दलित कलाओं की प्रस्तुति में उसका विशिष्ट स्थान है। रायलसीमा का एक प्रसिद्ध लोक नाट्य है 'उरूमुल नृत्यमु'। चंद्रप्पा के लिए यह लोक नाट्य सर्वस्व है। इसी 'उरूमुल नृत्यमु' की आराधना में डूबे रहने के कारण चंद्रप्पा का नाम ही 'उरूमुल चंद्रप्पा' पड़ गया था। इस उरूमुल गाने को बजाने में उसने नागन्ना को कई बारीकियाँ भी सिखाई। गंगा गीत गाने में वह माहिर था। उस गाने के सभी सुरों को चंद्रप्पा ने ही नागन्ना को सिखाया था। दलितों की शोषित अवस्था के साथ ब्राह्मण जाति की शोषण प्रवृत्ति के बारे में अधिकांश विषय में कहा गया था। उस समय पुराणों का वक्र भाव ब्राह्मणों द्वारा साधारण जनता तक पहुँचता था। उस का सही ज्ञान चंद्रप्पा ने नागन्ना को समझाया था। इन बातें को सुनकर नागन्ना कहता है 'अरे ब्राह्मण लोगों ने तो इस का अर्थ ऐसा नहीं बताया था।' (पृ.-26) इस कथन से यह पता चलता है कि चंद्रप्पा परिस्थितियों की गहराईयों को जानने में कितना सक्षम था। वह भोगे हुए यथार्थ को चित्रण के साथ वेद काल से शोषित वर्ग की स्थिति गतियों को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया करता था। दलितों के नज़रियों से भारत की प्राचीन स्थितियों तथा पुराण के रहस्यों को जानने की क्षमता चंद्रप्पा में पाई जाती है। चंद्रप्पा की व्यक्तिगत जीवन की बातें इस कहानी में दिखाई नहीं देती है। लेखक ने चंद्रप्पा को परिवार के साथ नहीं, समाज के साथ जोड़ा है। इसी कारण वह अपने साथ एक जुट बना सका, जो मेरे आदि में जाकर अपनी कला को प्रदर्शित किया करते थे। नागन्ना को चंद्रप्पा अपने बराबर लोक गीत एवं लोक नृत्य प्रदर्शित करने वाला बनाना चाहता था। अपनी इच्छा की पूर्ती कर, चंद्रप्पा नागन्ना को एक सुन्दर कलाकार बना पाता है।

21.2.2 नागन्ना

नारिगाडु और लच्चिमी का बेटा नागन्ना है। उस का जन्म 'एन्नेलदिन्नि' गाँव में होता है। नारिगाडु मजदूरी कर अपने परिवार का पालन-पोषण करता है। जब एक बार पूरा गाँव बाढ़ का शिकार हो जाता है तो, चमार मातय्या के संग मिल कर वह दलितों की सहायता करता है। अपने लोगों के प्रति प्रेम भावना रखने वाला नारिगडु अंत में उस गाँव के मुखिया के हाथ अपनी ज़िन्दगी खो देता है।

पिता की मृत्यु के बाद नागन्ना अपनी माँ को लेकर एन्नेदिन्नि गाँव छोड़कर धर्मापुरम चला जाता है। वहाँ नागन्ना का परिचय उरूमुल चद्रप्पा से होता है। इस प्रकार वह धर्मापुरम में ही बड़ा होता है। चंद्रप्पा के साथ रहकर 'उमुल नृत्य' सीखकर उमुल नागन्ना बन जाता है। चंद्रप्पा की मृत्यु के बाद खुद ब खुद इस कला के प्रदर्शन में अच्छा नाम कमाता है। किशोर अवस्था में शादी करता है लेकिन उस की पत्नी मरे हुए बच्ची को जन्म देकर खुद भी मृत्यु का शिकार हो जाती है। इस घटना से नागन्ना को बड़ा सदमा पहुँचता है। एक प्रकार जीवन से भयभीत हो जाता है। लेकिन इस स्थिति से उभरने के लिए वह नृत्य का सहारा लेता है। अपने थिरकते पावों के साथ, डफली की गर्जना को जोड़ कर निरंतर नए गानों के सृजन में अपने भूत एवं वर्तमान के अंधकारमय जीवन को भुलाने में समर्थ हो जाता है।

ऐसे ही घूमते-घूमते वह पक्कलदिन्नि गाँव पहुँचता है। वहाँ वह अपनी कला का प्रदर्शन करने लगता है। यहीं उस का मित्रता एल्लन्ना से होती है। एल्लन्न को साथ ले कर वह फिर एन्नेलदिन्नि गाँव पहुँचता है। वहीं एल्लन्ना को अपने जैसा कलाकार बनाने में तल्लीन हो जाता है। यहाँ आने के बाद नागन्ना जान लेता है कि उसके पिता के हत्यारे उस गाँव के मुखिया ही है।

नागन्ना को पुनः अपने बचपन की यादें सताती है। वह उच्च कुल के लोगों द्वारा दलितों पर किए गए अत्याचारों को भूल नहीं पाया, न ही अपने पिता के हत्यारों को ही भुला सका है। यहाँ आने के बाद उसने जाना की उस का लक्ष्य क्या है? एक कलाकार के नाते वह इस गाँव के महार और चमार लोगों को एक ओर अपने लोक नृत्य एवं गीत सिखाता रहा और दूसरी तरफ इसी कला के माध्यम से उसमें चेतना जागृत करने का भरसक प्रयास करता गया।

नागन्ना अब मौके की तलाश में रहने लगा कि किस तरह वह अपने दलितों को खेत-खलिहान दिला सकेगा। इसकी ताक में ही रहते हुए वह उस गाँव के मुखिया के मन में एक डर पैदा कर पाता है कि एन्नेलदिन्नि का महार प्रांत भूतों का अड्डा है। इसी कारण मुखिया लोग न चाहते हुए भी वह ज़मीन दलित लोगों को खेती बाड़ी करने के लिए दे देते हैं। यह एक प्रकार से नागन्ना और एल्लन्ना की जीत ही है। दलितों के भविष्य के लिए यह एक आशा की किरण है।

दलितों के कला प्रदर्शन द्वारा ही उस गाँव के लोगों का मनोरंजन होता था। उस समय उस गाँव में कोई भी कला गाँव के मुखियाओं की हाजिरी के बिना प्रारंभ नहीं होती थी। नागन्ना की यही आशा रही कि केवल आस ही रह जाती है। इस आस को पूरा किये बिना नागन्ना चल बसता है। लेकिन मरने से पहले अपनी आकांक्षाओं एवं आशाओं को लेकर एल्लन्ना को समझाने में उस ने कोई कमी नहीं की है। इस प्रकार नागन्ना ने दलितों की स्वस्थ जिन्दगी की कामना की। अपने जीवन के लक्ष्य को एल्लन्ना को समझाने में सफल हो पाया है।

21.2.3 एल्लन्ना

एल्लन्ना इस उपन्यास की चौथी पीढ़ी के व्यक्ति है। एर्रकेडु और लिंगालु का बेटा है एल्लन्ना। लेकिन उस की परवरिश बुआ भूदेवी ने ही की। बचपन से ही भूदेवी के गाने सुन सुन कर एल्लन्ना बड़ा हुआ है। एल्लन्ना भूदेवी के गीत सुनते सुनते खेलता था, गीत सुनते हुए खाना खाता था। लोरी गीत सुनकर ही सोता था। भूदेवी की अपनी कोई संतान नहीं थी। इस कारण उसका पूरा प्यार एल्लन्ना को ही मिला। बाल्यकाल के दिन खाते पीते, गाते खेलते गुज़रने लगे। एक दिन उस गाँव के ग्वाले कोई नाटक का अभिनय कर रहे

थे। उस नाटक को देखने के लिए अनजाने में ही उस के कदम उच्च जाति की गली तक पहुँच गये। वहाँ के बच्चे इस अछूत बच्चे का यहाँ आना सह नहीं पाए। उन्होंने एल्लन्ना की खूब पिटाई की। डर के मारे एल्लन्ना भागता चला गया और पास के पक्कलदिन्नी गाँव पहुँच गया है। इस घटना ने उस की पूरी ज़िन्दगी को ही बदल दिया था। वहीं उसका परिचय उरूमुल नागन्ना से हुआ जो दलितों की सांस्कृतिक कला में पारंगत था। नागन्ना ने ही उसे संभाला। एल्लन्ना द्वारा नागन्ना को एन्नेलदिन्नि गाँव की याद आई। इस कारण उसे लेकर एन्नेलदिन्नी गाँव पहुँचता है।

नागन्ना के पर्यवेक्षण व दिशा-निर्देशन में एल्लन्ना लोक कलाओं के साथ पौराणिक कथाओं के अर्थों को भी जानने लगता है। भले ही एल्लन्ना को अक्षर ज्ञान नहीं है, लेकिन भविष्य के स्वप्न देखने में कोई कसर नहीं छोड़ता था, इसी के साथ उसके दिल में दया एवं सहानुभूति का गुण भी हैं और दूसरे के साथ मिल जुलकर रहने की आकांक्षा भी है। ये सारे गुण उसे जन्म से ही प्राप्त गुण हैं। सभी विषयों से संपादित होकर उसने स्वयं गीतों की रचना भी की थी। और गाता भी था। इसी कारण उसे गानेवाला और नाचनेवाला एल्लन्ना के नाम से लोग जानने लगे। एल्लन्ना के सभी गीतों में गाँव का प्रतिबिंब दिखाई देता है। उस गाँव की गरीबी, भूख और अछूतपन के विषय सभी के दिलों को छू जाते थे। कहा जाता है जब नाटक में हिरण्यकश्यप पात्र को खेलने लगता था, ग्रामीण स्त्रियों के आने से लोग मना भी करते थे। क्योंकि इस प्रकार वह पात्रों में जी लेता था। नागन्ना के साथ मिल कर वह आस-पास के गाँवों में अपनी कला का प्रदर्शन कर खूब नाम कमा चुका था। वह अपने ही गाँव की सुभद्रा से प्यार कर शादी कर लेता है। तब से उसके हरेक गाने में सुभद्रा का नाम अवश्य ही जुड़ा रहता है। अपनी पत्नी को 'एन्नेल पिट्टा' (चाँद की चिड़िया) 'मुग्गुल कर्रा' (रंगोली की छड़ी) कह कर संबोधित कर अपना प्यार जताता था।

केवल लोक कला की अभिव्यक्ति में ही वह मशहूर नहीं था, वरन् प्रगतिशील विचारों से भी वह प्रेरित था। एन्नेल्लदिन्नी गाँव में अपने लोक संगीत और लोक नृत्य के ज़रिए लोगों में चेतना को जागृत करने वाला, कला तपस्वी भी था। वह नागन्ना के साथ मिलकर दलितों के लिए ज़मीन हासिल करने में सफल हुआ है। इस तरह कुछ हद तक बेरोजगारी से दलितों को मुक्त कराने में सफल हो पाया था। अपने गाँव के सभी मुखिया लोगों को छोड़ अपने ही दलित जाति के बुज़ुर्गों को सम्मान दिलाने की आशा रखने वाले एक आदर्श व्यक्ति के रूप में वह जीवन में आगे बढ़ता है।

एल्लन्ना में एक और महत्वपूर्ण गुण था। वह है उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व। सदा वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा किया करता था। उसमें सभी समस्याओं एवं सभी लोगों से टक्कर लेने की शक्ति पाई जाती है।

नागन्ना के मर जाने के बाद नागन्ना के सदाशय की पूर्ती के लिए मार्ग ढूँढ़ते हुए एन्नेलदिन्नी गाँव के बाहर वह कदम रखता है। इस महत्तर कार्य-साधना के लिए अपनी पत्नी को तथा नवजात शिशु शिवय्या के लिए गीत गा कर सुनाता था। उन गीतों में दलितों की वेदना रहती थी। उनकी वेदना को प्राकृतिक विषयों के साथ जोड़कर दलितों की समस्याओं को लोगों के सामने रखा करता था। दलित जीवन से जुड़ी खेत-खलिहान की बातें, इन से जुड़ी दलितों की ज़िन्दगी, इन सभी तथ्यों को अपने गीतों में प्रतिबिंबित करता हुआ एक गाँव से दूसरे गाँव यात्रा करने लगता था। (पृ.-81) अपने गानों से हर बस्ती के दलितों को प्रेरित किया करता था। इसी कारण कई उसे 'महतार सन्यासी' के नाम से पुकारते थे। जहाँ कहीं भी उनके गानों में सुभद्रा रहती थी, ऐसा लगता था उसका हर अनुभव सुभद्रा को सुनाते हुए गाता रहता है।

प्रेम का उदात्त रूप एल्लन्ना के गानों में व्यक्त होता है। वर्षा की बूँदों में, गरजने वाले मेघों में, नदी नालों के बहते पानी में खेतों से उड़ने वाली हवाओं में, कोमल पत्तों में मन में उठने वाली आशा की किरणों में, एन्नेलदिन्नी गाँव की चिड़ियों की सुर में निस्तब्धता में, नृत्य-संगीत में हर जगह उसने सुभद्रा को प्रतिबिंबित किया है। मानो इसके गानों से पूरी प्रकृति पुलकित हो उठी हो। इसी यात्रा के दौरान वह कुम्हार वेंकटेश्वर से परिचय पाता है। वेंकटेश्वर भी प्रगतिवादी कवि है। उसी ने एल्लन्ना का डफली बजाने वाले चमार रमणय्या से परिचय कराता है। वहाँ एक बार अकाल पड़ता है तो एल्लन्ना को गाँव की याद आती है। उस समय गाँव के लोग अकाल के शिकार हो जाते हैं। थका-प्यासा एल्लन्ना अपनी अंतिम अवस्था में एन्नेलदिन्नी गाँव तक पहुँच पाता है। वहाँ उसका बेटा पिता को पहचान कर घर ले जाता है। वहीं उसकी अंतिम सांस निकलती है। इसे देख सुभद्रा के प्राण पखेरू भी उड़ जाते हैं। प्रेम की विलक्षण महत्ता को लेखक ने इन पात्रों के ज़रिए दिखाया है।

दलितों के उज्वल भविष्य की उम्मीद रखने वाले एल्लन्ना के उदात्त विचार केवल एल्लन्ना तक ही सीमित नहीं रहें बल्कि उसकी पत्नी सुभद्रा में भी दिखायी देते हैं। दोनों अमर प्रेमी बन कर इहलोक की यात्रा समाप्त कर लेते हैं। वह हमेशा खोज की दिशा में अग्रसर होने वाला कर्मयोगी है। वह दलित जाति के लिए अनमोल संपत्ति के समान है।

21.2.4 रूबेन

दलित वंश परंपरा की छठी पीढ़ी का व्यक्ति है रूबेन। शिवय्या उर्फ़ सीमोनु और शशिरेखा का इकलौता बेटा है। उच्च जाति के लोगों के अत्याचारों के कारण वकसपाडु बस्ती जब आग की लपटों से भस्म हो जाती है तो, ठीक उसी समय रूबेन का जन्म होता है। माँ-बाप उस आग के शिकार हो जाते हैं तो इस बच्चे को अनाथाश्रम भेज दिया जाता है, जो दानकोंड़ा प्रांत में फ्रांसिस के द्वारा चलाया जा रहा था।

एल्लन्ना जो रूबेन का दादा है, अछूत समाज में चेतना जागृत करने की प्यास में ही चल बसता है। अब इसी का पोता रूबेन अपने दादा, परदादाओं की खोज में संलग्न रहता है। इसी तलाश में रूबेन को उस इलाके का पता चलता है, जिसे 'माला दिब्बा' (महार का स्थान) कहा जाता था। एल्लन्ना द्वारा रचित गीतों में इसका जिक्र बार-बार होता था। जब रूबेन को इसका पता चलता तो उस स्थान से संबंधित वीरगाथाओं की कथाओं की जानकारी के साथ उस वीर रस को दलित लोगों में जगाने वाले विशेष व्यक्तियों के बारे में जैसे मातय्या, नारिगाडु की जीवनी को भी जानने का सुअवसर रूबेन को मिला था। इस चेतना को क्रियाशील बनाने वाले नागन्ना और एल्लन्ना की पूरी जानकारी प्राप्त करने में वह मग्न हो जाता है।

रूबेन की शादी अनाथाश्रम के संरक्षक फ्रांसिस की बेटी रुतु से होती है। रुबेन सुन्दर एवं सुशिक्षित युवक है। अपने पूर्वजों की जानकारी हासिल करने के बाद, अपने परिवार के सदस्यों को अपने गाँव से यहाँ तक अपनी शादी मे बुलाता है। इतना ही नहीं अपनी पत्नी को वलसपाडु और एन्नेलदिन्नी गाँव भी दिखाता है। इन सब की यादों को यादगार बनाने के लिए ये लोग एक घर भी बनाते हैं। रूतु की पहली संतान एन्नेलदिन्नी गाँव में ही जन्म लेती है।

रूबेन एक ओर अस्पताल में काम करते हुए दूसरी ओर दलितों के उद्धार के लिए निरंतर क्रियाशील रहता है। उसमें क्रांतिकारी व्यक्ति ही ज्यादा दिखाई देता है। हो सकता है कि अपने पूर्वजों के जीवन संघर्ष की गाथाएँ उसे इस तरह सोचने के लिए प्रेरित किये हो। स्वयं अपने आप को जानने के लिए उसे काफी परिश्रम करना पड़ा है। उसने जीवन को समझा है। समाज को पढ़ चुका है। साहित्य और कलाओं की जानकारी प्राप्त की है।' (पृ.-164)

अंग्रेजों के साथ काम करता था। एकाध को छोड़ कर अन्य अंग्रेजों के प्रति उसके मन में गौरव की भावना नहीं थी। सरकारी कार्यालयों में, कचहरियों में, अस्पतालों के ब्राह्मणों के अत्याचारों को वह सह नहीं पाता था। शिवय्या उर्फ़ सीमोनु के अंदर का डरपोक स्वभाव शायद रूबेन का भी पीछा नहीं छोड़ रहा था। स्वार्थवश धर्म बदलने वाले उच्च जाति के लोगों से तो और भी नफरत करता था। ऐसे लोगों के बारे में रूबेन कहता था कि 'ये लोग ईसा पर विश्वास रख कर यहाँ नहीं आते हैं, इन्हें तो पद और अधिकार चाहिए।'

एक बार उच्च जाति का रेड्डी जिसने अंगेजों को खुश करने के लिए अपना धर्म बदल कर ईसाई बन गया था, उस ईसाई को ही सरकार एक स्कूल का प्रिंसीपल बना देती है तो गुस्से से वह कहता है 'क्या इन लोगों को महारों का ईसाई या चमारों का ईसाई नहीं मिला तो रेड्डी ईसाई को लाकर यहाँ बिठा दिया।' रूबेन इस तरह उच्च वर्ग के स्वार्थीपन से घृणा करता था। रूबेन का परिचय रामनुजम से होता है जो प्रगतिशील विचार रखता है। रामानुजम की बातों से रूबेन जान पाता है कि किन-किन अत्याचारों से अपने पूर्वजों को गुजरना पड़ा था। इन्हें सर्व सामान्य बातों से दूर रखा जाता था। भगवान की प्रार्थना करने पर भी इन पर पाबंदियाँ रखी जाती थी। मंदिर में प्रवेश पाने के लिए भी इन्हें संघर्ष करना पड़ा था। स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यक्रमों में अस्पृश्य-निवारण एक मुद्धा था, जिसे गाँधी जी के नेतृत्व में आगे बढ़ाया गया। इन सब की जानकारी भी रामनुजम से ही रूबेन लेता है। इन प्रगतिशील विचारों को रूबेन केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखते अपने बेटे इम्मानुएल और पोते जेस्सी में भी इनके बीज बोने में सफल हो जाता है। इसी कारण जब उनका पोता जेस्सी नक्सलवादी आंदोलन में कार्यरत रहा, तब उसने उसे रोकने का प्रयास नहीं किया।

रूबेन अपने पूर्वजों की बातें भुला नहीं पाता है। इस कारण इस व्यक्ति का नाम पुरानी व्यक्ति पड़ चुका था। यहाँ पुरानी पीढ़ी का विश्लेषण करते हुए लेखक कहते हैं 'पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति अर्थात पुरानी विषयों पर विश्वास रखने वाला व्यक्ति हो सकता है। रूबेन इसके बारे में शास्त्र परक तर्क के आधार पर कई रहस्यात्मक नये तथ्यों को जान पाया था।' (पृ.-173) रूबेन कहा करता था 'मेरे पूर्वजों ने जिसे खोया है उसी की खोज में रहा हूँ। मेरी दादी ने मुझे बताया था कि मेरे दादा भी मेरे ही तरह सोचा करते थे। मां ने बताया पिता भी इसी तरह खोज करते करते गुजर गये हैं। उसके बाद दादी और माँ सब ने अपने को अपने अस्तित्व को खोजने का प्रयास किया है। मेरे पूर्वजों की धरती में कदम रख पाया हूँ। उनकी जीवन की त्रासदी को जान पाया हूँ। (पृ.-173) रूबेन ने इन सब विषयों को डायरी में लिखकर संकलित किया है। रूबेन ने सोचा इन विषयों की जानकारी आने वाले कल के लिए आवश्यक है। इस प्रकार रूबेन पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच सीढ़ी समान प्रतीत होता है।

रूबेन के द्वारा व्यक्त किया गया यह कथन भी उसके चरित्र पर प्रकाश डालता है। 'ईसा मसीहा मेरा विश्वास है, संघर्ष मेरी ज़रूरत है, मेरा बच्चा सदियों पुराने संघर्ष का प्रतिरूप है, मेरे संतान का संघर्ष एक महतार या चमार के लिए दिखावे का नहीं है। यह आदर्श के लिए नहीं, ज़रूरत है। अछूत बन कर जन्मा हूँ। जन्मते ही दूर फेंका गया हूँ। लोगों द्वारा बहिष्कृत किया गया हूँ। इन सब विषयों को जानकर, समझते हुए समाधान ढूँढ़े और मेरे सामने रखा है।' (पृ-211) रूबेन जानता है समाज में उसे कौन सा स्थान मिला है। फिर भी वह सोचता है कि जीवन संघर्ष के सामने जाति संघर्ष कोई कम नहीं है। रूबेन अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता है। उनका प्यार एक आलौकिक प्यार है। कोई रूबेन जिस निस्तब्धता के साथ रूतु के जीवन में आया था, उसी निस्तब्धता के साथ चला भी गया था। लेकिन जाने वाले व्यक्ति चुपचाप नहीं जाते। वह बहुत सारा वसंत कई लोगों की ज़िन्दगियों में बिखेरता चला गया है। रूबेन इस उपन्यास में लेखक की कल्पना का सुन्दरतम रूप ही माना जा सकता है।

21.2.5 रामनुजम

इस उपन्यास का एक और विशेष पात्र है रामनुजम। वह शिक्षित एवं प्रगतिशील विचारों वाला व्यक्ति है। पेशे से अध्यापक है। अत्याचारों को सहन नहीं कर सकता है। अनैतिक जहाँ कहीं भी दिखाई दे, सीधे उस का खण्डन करने वाला मुँह-आदमी है। इसी कारण कभी भी एक नौकरी में टिका नहीं रह सका है। सांसारिक जीवन के बंधनों में वह बँधना नहीं चाहता है। वह इसे अपनी प्रगति में बाधक मानता है। सच्चे दिल से दलितों के उद्धार हेतु कार्यशील रहने वाला उदात्त व्यक्ति है।

दलितों की अत्याचार की दिशा में चलाये जाने वाले सभी आंदोलनों के प्रति वह विश्वास नहीं रखता है। जैसे गाँधी जी द्वारा प्रारंभ किए गये हरिजनोद्धार आंदोलन के प्रति वह विश्वास नहीं रखता। वह सोचता है इस के माध्यम से सभी को स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी करते हुए स्वतंत्रता भले ही हासिल कर सके, लेकिन दलितों की निजी ज़िन्दगी में विशेष रूप से कोई प्रगति की संभावना नहीं हो पाएगी। रामानुजम कहता है, 'उस ब्राह्मण समाज ने दलितों को तो अस्पृश्य बना दिया है। अब गाँधी जी ने हरिजन शब्द का प्रयोग कर उन्हें अनाथ भी बनने के लिए विवश कर दिया है। विचारों से पता चलता है कि उसके मन में दलितों के प्रति कितनी गौरव एवं सम्मान की भावना है। उच्च वर्ग द्वारा अपनाए जाने वाले शब्द जैसे 'पवित्रता' या शुद्धि नामक शब्दों से उसे आपत्ति है। वह अपना तर्क यों प्रस्तुत करता है कि उच्च जाति के लोग कहते है, आंतरिक पवित्रता के लिए 'राम नाम स्मरण' आवश्यक है और बाह्य पवित्रता 'स्नान' से मिल सकता है। गो मांस खाने वालों का ये लोग बहिष्कार करते हैं। वे कहते हैं ऐसे लोग हिन्दू ही नहीं हो सकते। उन्हें मन्दिरों में जाना मना है। क्योंकि वे पवित्र नहीं हैं। इन बातों के खोखलेपन पर रामनुजम प्रश्न करता है। इस प्रकार दलितों की प्रगति में निरंतर आगे बढ़ने वाला व्यक्ति रामनुजम इम्मानुएल की मृत्यु के समय दिखाई नहीं देता है। उस के बाद पता चलता है कि वह यहाँ से श्रीकाकुलम जा कर नक्सलवादी आंदोलनों में भाग लेने चला गया है। उसके बाद पता चलता है कि वह यहाँ से श्रीकाकुलम जा कर नक्सलवादी आंदोलनों में भाग लेने चला गया है। उस समय कई शिक्षित व्यक्ति इस नक्सलवादी आंदोलनों में भाग लेने चले गए हैं। उन लोगों का यही विश्वास था कि समतामूलक समाज की स्थापना इस स्वार्थपूर्ण समाज में रहते हुए संभव नहीं है। लक्ष्य पूर्ती हेतु यहीं नक्सलवादी आंदोलन ही सही मुक्ति दिलाने में संभव होगी।

21.2.6 जेस्सी

इम्मानुएल और मेरी सुवार्ता का इकलौता पुत्र जेस्सी है। रूबेन और रूतु का पोता है। जेस्सी दलित वंशजों की अंतिम पीढ़ी के वारिस है। बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाती है। दादा-दादी के लाड़ प्यार से पल कर बड़ा होता है। बचपन से ही अपने पूर्वजों की कथाएं सुन कर बड़ा हुआ है। उनके द्वारा सहे गये अत्याचारों से उस का दिन आक्रोश से भर उठा है। पिता के त्याग से उसका दिल पसीज जाता है। इस कारण दलितों के स्वस्थ जीवन के निदान ढूँढ़ते रहता है। निरंतर जेस्सी के दिलो-दिमाग में दलितों के स्वेच्छायुक्त ज़िन्दगी की कामना के ख्वाब जगाए रहता है। इन्हीं विचारों में लीन जेस्सी घर-बार की याद नहीं रखता है। जीने की सुध उसे नहीं रहती है।

एक दिन वह अपने दिल की बात परिवार वालों के सामने रखता है कि जिन परिस्थितियों से संघर्ष से उसके पूर्वज संघर्ष करते रहे, उसी लक्ष्य को पाने घर छोड़ कर जाना चाहता है। सभी लोग उसके विचारों का आदर करते हैं। हँसी-खुशी विदा करते हैं। उसकी कामना यही थी कि उनके पूर्वजों पर लगा हुआ अस्पृश्यता का कलंक सदा के लिए मिट जाएं।

जिस धरती पर उन्होंने जन्म लिया है, उस धरती पर वे लोग भी अधिकार पूर्वक, स्वतंत्र हो कर जी सके। इसी प्रयास में पूर्वजों द्वारा रचे गये गानों को गाता हुआ सभी के वीर की प्रवृत्ति जेस्सी में आद्यंत दिखाई देती है।

21.3 अस्पृश्य वसंत उपन्यास के स्त्री पात्र

21.3.1 रूतु

रूबेन की सुन्दर एवं सुशिक्षित पत्नी रूतु है। फ्रांसिस और मरिया की इकलौती बेटी है। छठवीं पीढ़ी की वारिस बन कर इस उपन्यास में आती है। रुतु पति की आकांक्षा को समझने वाली पति के वंशजों की खोज में खुद को भी शामिल करती हुई चलती है। इतना ही नहीं पूर्वजों के इतिहास को भविष्य में आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने मे सत्त क्रियाशील रहने वाली कर्मठ नारी है। शिक्षा के साथ साथ धार्मिक विषयों के प्रति भी आसक्ति रखती है। उस का विश्वास हो तो उस व्यक्ति की सदगति निश्चित है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वह कई कहानियाँ लिखकर, समाज में भक्ति-भावना प्रसारित करने का प्रयास करती है। उसकी दृष्टि में धर्म का अर्थ है कर्तव्य जिसके आधार पर व्यक्ति के अंदर नैतिक बल आ जाता है। वह समतामूलक समाज के निर्माण की स्थापना के लिए इस प्रकार की दृष्टि पर विश्वास रखती है।

वह नर्स की ट्रेनिंग पाकर पति जिस अस्पताल में काम करते हैं, वही पर कार्यरत रहती है। शादी के बाद ससुराल के सभी रिश्तेदारों से मिल जुलकर, सबसे प्यार पाती। वह पति के गाँव एन्नेलदिन्नी को ही अपना गाँव समझ वही रहने के लिए तैयार हो जाती है। पति के पूर्वजों की याद में उसी गाँव मे घर भी बनवाती है। इम्मानुएल का जन्म इसी गाँव में होता है।

रूतु समसामायिक परिस्थितियों से परिचय पा कर उसी के तदनुकूल लोगों के सेवा कार्यक्रमों में लीन रहा करती है। गाँधी जी द्वारा प्रारंभ किए गए हरिजनोद्धार संबंधी आंदोलन के बारे में पति एवं रामानुजम के बीच बातचीत द्वारा जान कर उनकी अच्छाई को समझने का प्रयास करती है। इतना ही नहीं डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर उन्हें सक्रिय रूप देने में तत्पर रहा करती है।

वह संवेदनशील नारी है। दलितों पर होने वाले अत्याचारों को सुनकर द्रवीभूत हो जाती है। वह तत्कालीन परिस्थितियों में भी इन पर होने वाले अत्याचारों से सांपदित हो कर सोचती है 'कितने भीषण काण्ड हो रहे हैं। लोगों में कितना घमंड़ीपन आ गया है। संपूर्ण विज्ञान के कर्ता-धर्ता स्वयं को मानते हुए, जाति नाम की चादर ओढ़ कर उसी नाम के कलम से राज करने पर तुले हैं। न जाने कितने लोगों के प्राणों का हरण कर रहे हैं।' (पृ.-62)

समय किसी के लिए नहीं रूकता है। यह भी सच है कि समय के साथ काफी कुछ बदलता है। लेकिन विड़ंबना की बात है कि दलितों की स्थिति गतियों में विशेष परिवर्तन नहीं आया है। समय ऐसा आ गया है कि आज का यह शोक वर्ग जो कभी वेदों का सहारा ले कर, अपने धर्म की दुहाई दिया करता था, आज उसी वर्ग के लोग अपने पदों को बनाए रखने की स्वार्थ में अंग्रेजों के ग़ुलाम होते जा रहे हैं। आज पूरा समाज उच्च कुल की धुरी पर टिका हुआ है। सभी पद और अधिकार उन लोगों तक ही सीमित रह गए हैं। इस प्रकार के कठोर सत्य से रूतु अवगत हो चुकी है।

रूतु ईसाई धर्म में पली है। सुसंस्कृत ईसाई पुरूष पति के रूप में पायी है। ईसाई धर्म पर उसे अटूट विश्वास है। इतना होने के बावजूद अपने बेटे को आंदोलन की तरफ बढ़ते हुए

देख कर भी वह उसे रोकती नहीं है। उसकी सोच है कि शायद उसका बेटा इस रास्ते पर जा कर समतामूलक समाज की स्थापना कर पाएगा। जब उसका बेटा मर जाता है तो वह विचलित नहीं होती है। उसके वीर मरण पर गर्व करती है। अपनी बहू को सांत्वना देती हुई कहती है 'मेरा बेटा समय का गति का प्रतीक है। आंदोलन को लेकर आगे बढ़ा, जुलुस का नेतृत्व करते हुए कदम बढ़ाता गया। अभी भी इस धरती से उसकी आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती है। नींद से दूर इस आँखों के सामने चाँदनी बिखरती हुई उसकी आँखों की ज्योती दिखाई दे रही है।' (पृ.-214) ऐसे महान विचारों से प्रेरित रूतू का आत्म बल सचमुच महान है। बेटे का गौरवगान करने वाली प्रगतिशील नारी भी है।

पोता जेस्सी को भी अपने पिता के कदमों में आगे बढ़ते देख चुप हो जाती है। नक्सलवादी आंदोलन में भाग लेता हुआ जब उसका पोता घर से दूर चला जाता है, तो वह सोचती है अब उसके आने तक उसके पंख-पखेरू नहीं रहेंगे। इस कारण वह एक पत्र उसके नाम लिखती है। इस पत्र में सभी विषय उसके साथ-साथ नक्सलवादी आंदोलनों में भाग लेने वाले सब लोगों के लिए लिखा हैं। उस पत्र से उसका सहज संदेश यों व्यक्त हुआ है - ''हम लोग उलझन में थे कि हमारे पूर्वजों के किन संस्कारों को इम्मालुएल को दे, लेकिन इससे पहले ही उसने हमें आगे बढ़ने का रास्ता दिखाया है। उसने जिस क्रांति पर विश्वास किया उसी क्रांति को पुश्तैनी संपत्ति के रूप में अपने माँ-बाप और बच्चों के लिए छोड़ गया है। आप लोग आंदोलन को ही जीवन का रूप मान कर चले हैं। इस आंदोलन द्वारा सुन्दर भविष्य की कल्पना आप ने की है इस प्रकार की परवरिश में ही आप पले और बड़े हुए हैं। इसी क्रांति को आपने अपना कर्तव्य स्वीकारा है। इस क्रांति के कारण आगे आने वाली सभी समस्याओं का सामना करने की शक्ति आप लोगों में हैं। इसके लिए आप अपने प्राणों की आहुति देने में भी पीछे नहीं हटेंगे। इस प्रगति में जीत आपकी ही होगी। लड़ने वाले व्यक्ति कोई भी हो अपनी लड़ाई हारने के लिए नहीं लड़ते हैं। ऐसे कर्तव्य-निष्ठ व्यक्ति का अंत करना किसी के वश की बात नहीं है। आपका जीवन तो विकसित पौधा है। सुन्दर आकाश के नक्षत्र से निकलने वाली क्रांति समान है। यह शास्वत भी है। आप नूतन मानव की कामना कर रहे हैं। नए समाज की चाह आप में है। इस ऐतिहासिक स्वप्न को यथार्थ में बदलने में आप प्रयत्न कर रहे हैं। इनका समग्र रूप ही क्रांति का रूप है। प्रेम, त्यागमय संघर्ष ये सभी भावनाएँ इस समग्र सत्य की शाखाएँ हैं। आप अवश्य विजय रूपी अनुभव को प्राप्त कर सकेंगे। मेरा विश्वास कभी झूठा साबित नहीं होता है। आप अवश्य दुनिया जीतेंगे।' (पृ.-221) दार्शनिक तत्वों के प्रति वह सदा आकृष्ट रही है। वह अपने पति को निरंतर आश्वासन देती रहती थी कि 'समय कभी एक मोड़ पर रूक नहीं जाता है। न ही इस तरह आगे बढ़ता रहेगा। उसकी अपनी इच्छाएँ हैं। उसके अपने मोड़ है। यह होठों पर विकसित होने वाली मृदु मुस्कान नहीं है। हृदय को भेदने वाली पीड़ा भी हो सकती है। यह समय तो सुदीर्घ विश्वास है। इतना निश्चित है कि समय नहीं रूकेगा। इस हरियाली धरती पर भरपूर चाँदनी की वर्षा होगी। वह अंधकार को हर लेगी। समय ऐसा भी होता है, जीवन भी समय के समान ऐसा ही है। जीवन एक अनुभव हैं जीवन एक यथार्थ है।' (पृ.-214) ऐसी गंभीर एवं सुन्दर विचारों वाली रूतु की यादों से ही इस उपन्यास की कथा का क्रमिक विकास होता है। भविष्य की सुन्दर कामना करने वाली नारी के रूप में रूतु का चारित्रिक विकास होता है। एक विशेष नारी के रूप में इस उपन्यास में रूतु अपना विशिष्ट स्थान पाती है।

21.3.2 रूबी

रूबी रूतु की पोती है। जेस्सी से बेहद प्यार करती है। जेस्सी की लक्ष्य साधना को निरंतर प्रेरित कर, उसे आगे बढ़ने का हौसला देती रहती है। जेस्सी अगर क्रांतिकारी आंदोलनों

में भाग लेता है तो रूबी स्त्रियों के जीवन में सुधार लाने के लिए सतत् प्रयास में लगी रहती है। माँ-बाप अपनी बेटी की शादी किसी धनवान युवक से करना चाहते थे लेकिन वह जेस्सी से प्यार कर माँ-बाप के इरादों के खिलाफ़ जेस्सी से विवाह कर लेती है। विवाह करने के बावजूद भी वह पति को उसके लक्ष्य से दूर नहीं ले जाती बल्कि आदर्श पत्नी के रूप में उसे प्रेरणा देती रहती है। इस प्रकार स्वस्थ समाज के निर्माण द्वारा शोषित वर्गों की समस्याओं को दूर करने के लिए निरंतर अग्रसर होने वाली नारी के रूप मे उसका चरित्र विकसित होता है।

21.3.3 भूदेवी

भूदेवी एरैंकड़ की बहिन है। एल्लन्ना की बुआ है। उसका पति चीराला प्रांत का निवासी है। वह बचपन से अपने गानों के साथ एल्लन्ना को पालती है। एल्लन्ना उच्च वर्गीय लोगों द्वारा की गई पिटाई खाकर घर छोड़ कर भाग जाता है तो भूदेवी उसकी तलाश में दिन रात एक कर देती है। जब जान पाती है कि उच्च जाति के लोगों ने उसे बेदर्दी से पीटा है, तो उन्हें मार ड़ालने के लिए तैयार हो जाती है। इस उपन्यास में गानों के महत्व के साथ, कुछ पाने के लिए कुछ खोने की शक्ति का आरंभ भी इस पात्र के साथ प्रारंभ होते हैं। स्वयं उपन्यासकार कहते हैं कि उनके जीवन में भूदेवी ही उनका पालन-पोषण करने वाली उनकी ताई है। बचपन में उपन्यासकार की माँ मर चुकी थी, इसी ताई की गोद मे पल कर बड़े हुए थे। इस कारण भूदेवी पात्र को इस उपन्यास में सजीवता प्राप्त हुई है।

21.3.4 सुभद्रा

एल्लन्ना की पत्नी है सुभद्रा, जो पिट्टोडु की बेटी है। अत्यन्त सुन्दर स्त्री के रूप में इस का वर्णन उपन्यासकार करते हैं। जब सुभद्रा किशोर अवस्था में थी तो एल्लन्ना सुभद्रा को 'मुग्गुल कर्रा' (रंगोली की छड़ी) कह कर उसकी प्रशंसा करता था। इस उपन्यास में सौंदर्य एवं साहस के प्रतिरूप सुभद्रा का चारित्रिक विकास पाया जाता है। यह कहा जाता है कि मधुर गीतों के पीछे अत्यन्त दुखित यादें छुपी रहती हैं। इसी के तदनुरूप एल्लन्ना और सुभद्रा का प्यार भरा जीवन अत्यन्त सुन्दर होने के बावजूद भी वे सदा ही विरहावस्था में तपते ही रहे हैं। जब एल्लन्ना दलितों की उन्नति की खोज में निकलते समय अपनी पत्नी सुभद्रा से कहता है 'बस छोटा सा काम है, आ जाऊँगा' लेकिन यह छोटा सा विराम तब खत्म होता है जब एल्लन्ना अपने अंतिम क्षण बिताने एन्नेलदिन्नी गाँव पहुँचा। तब तक वे दोनों हर पल एक दूसरे की याद में ही समय बिताने रहे। एल्लन्ना के वियोग में सुभद्रा भी यहाँ अपने दलितों की ज़िन्दगी के खातिर मुखिया लोगों से टक्कर लेने के लिए सदा तत्पर रहा करती है। जब दलितों के खेत-खलिहान पानी के बिना सूखते गए तब वह चोरी चुपके पानी अपने खेत-खलिहान में लाने में सफल हो गए थी लेकिन जब मुखिया लोगों के इसका पता चला तो इस पर मार पीट करने लगे। तब सुभद्रा ही हट कर सब के सामने खड़े होकर मुखिया लोगों की बोलती बंद कर देती है। सभी के सामने वह देवता तुल्य बन जाती है। लेकिन कभी भी उसने अपने को बड़प्पन का दर्जा नहीं दिया। निरंतर पति के इंतजार में राह देखने वाली पत्नी ही रही और अपने बेटे की परवरिश के लिए तरसने वाली माँ ही बनी रही। अपने पति की खोज करते करते वह शशिरेखा को पाती है। शशिरेखा के गाँव में उसका पति रहता था और वहाँ के लोगों को गाने सिखाता था। बाद में यही शशिरेखा उसकी बहु और शिवय्या की पत्नी बनती है। जिन गानों को उसके पति ने शब्द

दिए हैं, उनमें आद्यंत सुभद्रा के प्रति प्यार झलकता रहा है। इस प्यार भरे गीतों में दलितों की जागृति की पुकार भी निहित है। इन्हीं गीतों को गाने वाली लड़की को ही सुभद्रा ने अपनी बहू बनाया।

21.4 सारांश

'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में उपन्यासकार ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से दलित जीवन को आविष्कृत किया है। वास्तव में 'अस्पृश्य वसंत' के पात्र दलित जीवन के यथार्थ से जूझते हैं और दलित यथार्थ से जूझते हैं और दलित यथार्थ को गढ़ते हुए एक नये अथवा समानता व समता पर आधारित समाज के निर्माण की और प्रयत्नरत हैं। 'अस्पृश्य वसंत' के प्रत्येक चरित्र की अपनी स्वभावगत विशेषता है। इन चरित्रों के माध्यम से उपन्यासकार जी. कल्याणराव ने दलित जीवन की व्यथा–कथा प्रस्तुत की है। साथ ही दलितों के संघर्षों को प्रगतिशील नजरिये से अभिव्यक्त किया है। इस तरह जीवन से प्रेरित पात्र, जीवन के महान लक्ष्य को व्यक्त करने में सफलता पा चुके हैं।

खंड के प्रश्न

1. पंजाबी दलित साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. डॉ. गुरुचरण सिंह राओ के जीवन और रचना पर प्रकाश डालिए।
3. 'मशालची' उपन्यास की रचनात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
4. 'मशालची' उपन्यास में दलित जीवन संदर्भों का परिचय दें।
5. 'स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद दलित जीवन स्थितियों में कहाँ तक अंतर आया, 'मशालची' के माध्यम से स्पष्ट करें।
6. पाठशालाओं में जातिगत भेदभाव के कारण अपमान झेलते दलित बालकों की मनोवैज्ञानिक स्थिति को 'मशालची' के माध्यम से रेखांकित कीजिए।
7. दलित जीवन की भीषण सच्चाई का 'मशालची' के माध्यम से विवेचन कीजिए।
8. विधायक का चुनाव लड़ रहे कट्टू की हत्या की साजिश के पीछे किसका हाथ था और इसका किसे लाभ मिला?
9. मशालची के लेखक किस वैचारिकी को केन्द्र में रखकर दलित मुक्ति संघर्ष द्वारा समतामूलक समाज का स्वप्न देखते हैं?
10. 'मशालची' के माध्यम से दलित मुक्ति संघर्ष की दिशा और दशा का विस्तार से वर्णन कीजिए।
11. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
12. ''अस्पृश्य वसंत' उपन्यास की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
13. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में जाति आधारित सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भों का यथार्थ चित्रण मिलता है। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
14. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में धर्म परिवर्तन की स्थितियों को उजागर किया है। धर्म परिवर्तन के कारणों की पड़ताल कीजिए।

15. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास में प्रस्तुत लोक संस्कृति एवं लोक कलाओं के महत्त्व को रेखांकित कीजिए।
16. 'अस्पृश्य वसंत' के चरित्र नागन्ना और रूबेन के माध्यम से दलित जीवन की वास्तविकता पर प्रकाश डालिए।
17. दलित जीवन के संघर्ष में सुभद्रा और रूतु जैसे स्त्री पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका का परिचय दीजिए।
18. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के स्त्री चरित्रों की विशेषताओं को स्पष्ट करें।
19. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के एल्लन्ना चरित्र पर टिप्पणी लिखिए।
20. 'अस्पृश्य वसंत' उपन्यास के चरित्र रामानुजम पर टिप्पणी लिखिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

'मशालची' उपन्यास की भूमिका–संत सिंह सीखों।

'सिरजणा' (चंडीगढ़) में संपादक, डॉ. रघबीर सिंह 'सिरजणा' का लेख।

'युद्धरत आम आदमी'– संपादक, रमणिका गुप्ता (पंजाबी दलित साहित्य विशेषांक)।

'वर्तमान साहित्य'– संपादक नमिता सिंह आदि (पंजाबी दलित साहित्य विशेषांक)।

अस्पृश्य वसंत, जी कल्याण राव, हिन्दी अनुवाद–वी. कृष्णा।

दलित साहित्य : एक मूल्यांकन, डॉ. चमन लाल, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा।

दलित साहित्य और मुख्य धारा, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित चेतना, (सचेतना पत्रिका का दलित विशेषांक), संपादक – महिप सिंह, चंद्रकांत बांदिवाडेकर, अभिव्यंजना प्रकाशन, नई दिल्ली।

हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, कालीचरण स्नेही, अराधना ब्रदर्स, कानपुर।

दलित साहित्य (वार्षिकी), संपादक– जयप्रकाश कर्दम, अकादमी प्रतिभा, दिल्ली।